आरोह

भाग 2

कक्षा 12 के लिए हिंदी (आधार)
की पाठ्यपुस्तक

© NCERT not to be republished

12070

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण

जनवरी 2007 माघ 1928

पुनर्मुद्रण

नवंबर 2007 कार्तिक 1929
दिसंबर 2008 पौष 1930
जनवरी 2010 माघ 1931
नवंबर 2010 कार्तिक 1932
जनवरी 2012 माघ 1933
दिसंबर 2012 अग्रहायण 1934
नवंबर 2013 कार्तिक 1935
दिसंबर 2014 पौष 1936
दिसंबर 2015 पौष 1937
दिसंबर 2016 पौष 1938
नवंबर 2017 अग्रहायण 1939
दिसंबर 2018 अग्रहायण 1940
अक्तूबर 2019 अश्विन 1941

PD 130T RSP

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2007

₹ 80.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा गोयल स्टेशनर्स, बी-36/9, जी. टी. करनाल रोड इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली-110033 द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-659-4

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन सी ई आर टी के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108ए 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *अनुप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *बिबाष कुमार दास*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन सहायक : *मुकेश गौड़*

आवरण एवं चित्र

अरविंदर चावला

© NCERT not to be republished

आमुख

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) सुझाती है कि बच्चों के स्कूली जीवन को बाहर के जीवन से जोड़ा जाना चाहिए। यह सिद्धांत किताबी ज्ञान की उस विरासत के विपरीत है जिसके प्रभाववश हमारी व्यवस्था आज तक स्कूल और घर के बीच अंतराल बनाए हुए है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या पर आधारित पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें इस बुनियादी विचार पर अमल करने का प्रयास हैं। इस प्रयास में हर विषय को एक मज़बूत दीवार से घेर देने और जानकारी को रटा देने की प्रवृत्ति का विरोध शामिल है। आशा है कि ये कदम हमें राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में वर्णित बाल-केंद्रित व्यवस्था की दिशा में काफ़ी दूर तक ले जाएँगे।

इस प्रयत्न की सफलता अब इस बात पर निर्भर है कि स्कूलों के प्राचार्य और अध्यापक बच्चों को कल्पनाशील गतिविधियों और सवालों की मदद से सीखने और सीखने के दौरान अपने अनुभवों पर विचार करने का कितना अवसर देते हैं। हमें यह मानना होगा कि यदि जगह, समय और आज़ादी दी जाए तो बच्चे बड़ों द्वारा सौंपी गई सूचना-सामग्री से जुड़कर और जूझकर नए ज्ञान का सृजन करते हैं। शिक्षा के विविध साधनों एवं स्रोतों की अनदेखी किए जाने का प्रमुख कारण पाठ्यपुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति है। सर्जना और पहल को विकसित करने के लिए ज़रूरी है कि हम बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में पूरा भागीदार मानें और बनाएँ, उन्हें ज्ञान की निर्धारित खुराक का ग्राहक मानना छोड़ दें।

ये उद्देश्य स्कूल की दैनिक ज़िंदगी और कार्यशैली में काफ़ी फेरबदल की माँग करते हैं। दैनिक समय-सारणी में लचीलापन उतना ही ज़रूरी है जितना वार्षिक कैलेंडर के अमल में चुस्ती, जिससे शिक्षण के लिए नियत दिनों की संख्या हकीकत बन सके। शिक्षण और मूल्यांकन की विधियाँ भी इस बात को तय करेंगी कि यह पाठ्यपुस्तक स्कूल में बच्चों के जीवन को मानसिक दबाव तथा बोरियत की जगह खुशी का अनुभव बनाने में कितनी प्रभावी सिद्ध होती है। बोझ की समस्या से निपटने के लिए पाठ्यक्रम निर्माताओं ने विभिन्न चरणों में ज्ञान का पुनर्निर्धारण करते समय बच्चों के मनोविज्ञान एवं अध्यापन के लिए उपलब्ध समय का ध्यान रखने की पहले से अधिक सचेत कोशिश की है। इस कोशिश को और गहराने के यत्न में यह पाठ्यपुस्तक सोच-विचार और विस्मय, छोटे समूहों में बातचीत एवं बहस, और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों को प्राथमिकता देती है।

© NCERT not to be republished

एन.सी.ई.आर.टी. इस पुस्तक की रचना के लिए बनाई गई पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति के परिश्रम के लिए कृतज्ञता व्यक्त करती है। परिषद् भाषा सलाहकार समिति के अध्यक्ष प्रो. नामवर सिंह और इस पुस्तक के मुख्य सलाहकार प्रो. पुरुषोत्तम अग्रवाल की विशेष आभारी है। इस पाठ्यपुस्तक के विकास में कई शिक्षकों ने योगदान किया; इस योगदान को संभव बनाने के लिए हम उनके प्राचार्यों के आभारी हैं। हम उन सभी संस्थाओं और संगठनों के प्रति कृतज्ञ हैं जिन्होंने अपने संसाधनों, सामग्री तथा सहयोगियों की मदद लेने में हमें उदारतापूर्वक सहयोग दिया। हम माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा प्रोफ़ेसर मृणाल मीरी एवं प्रोफ़ेसर जी.पी. देशपांडे की अध्यक्षता में गठित निगरानी समिति (मॉनिटरिंग कमेटी) के सदस्यों को अपना मूल्यवान समय और सहयोग देने के लिए धन्यवाद देते हैं। व्यवस्थागत सुधारों और अपने प्रकाशनों में निरंतर निखार लाने के प्रति समर्पित एन.सी.ई.आर.टी टिप्पणियों एवं सुझावों का स्वागत करेगी जिनसे भावी संशोधनों में मदद ली जा सके।

निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और
प्रशिक्षण परिषद्

नयी दिल्ली
20 नवंबर 2006

© NCERT not to be republished

यह पुस्तक

समय हर पल बदल रहा है, दुनिया हर क्षण नयी हो रही है, साहित्य में हर पल कुछ जुड़ रहा है, भाषा हर क्षण नया-नया रूप ले रही है—तो फिर इन तमाम बदलाव के साथ कदम बढ़ाते बच्चों के हाथ में एक नयी पाठ्यपुस्तक क्यों नहीं?

पिछले दिनों नयी पाठ्यपुस्तकों के आने के बाद शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों और टेली कांफ्रेंसिंग के ज़रिये अध्यापकों से जुड़ने का मौका मिला। उनकी आँखों में नएपन की चमक थी, ज़बान पर कुछ सवाल, जो घूम फिरकर लगभग हर कार्यक्रम में उठते रहे। बार-बार नयी किताब क्यों? तरह-तरह की हिंदी क्यों? अलग-अलग जवाबों वाले सवाल क्यों? इत्यादि-इत्यादि।

उपर्युक्त सारे सवाल एक विशेष डोर से बँधे हैं—वह है राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा(2005)। यह सुझाती है कि शिक्षा के उद्देश्य व्यापक होने चाहिए जिनमें—'विचार और काम की स्वतंत्रता, दूसरों की भलाई और भावनाओं के प्रति संवेदनशीलता, नयी स्थितियों का लचीलेपन और रचनात्मक तरीके से सामना करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भागीदारी की प्रवृत्ति और आर्थिक प्रक्रियाओं तक सामाजिक बदलाव में योगदान देने के लिए काम करने की क्षमता' (रा.पा.-2005, सार संक्षेप)प्रमुख हैं। शिक्षा के इन उद्देश्यों को आज के जटिल होते समाज में विशेषकर भाषा साहित्य के विद्यार्थियों को बार-बार जाँचने परखने की ज़रूरत है। इसी ज़रूरत को पूरी करने का प्रयास है—'आरोह भाग-2' जिसका निर्माण कक्षा-12 में हिंदी (आधार पाठ्यक्रम) पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए किया गया है।

तरह-तरह की हिंदी क्यों? हिंदी एक व्यापक भाषा है और संपर्क भाषा भी है। इसका लेखक और पाठक समुदाय भी बड़ा है। जो कुछ रोज़ रचा जा रहा है उसका दायरा एक ओर कश्मीर से कन्याकुमारी तक है तो दूसरी ओर विभिन्न अनुशासनों के रूप में इसका विस्तार भी है। एक ही शब्द नए प्रसंग में रखे जाने पर अलग अर्थ दे सकता है। यह समाज विज्ञान, पर्यावरण, विज्ञान, कला और साहित्य की भाषा को एक ज़िल्द में पढ़कर बेहतर जाना जा सकता है। भाषा के ये अलग-अलग प्रयोग ही उसे नया करते हैं। वह ठहरी हुई निर्जीव वस्तु नहीं है, बल्कि अपने वैविध्य के साथ विकास करती हुई सजीव धारा है। वैयाकरण किशोरीदास वाजपेयी ने लोक को ही भाषा के बनने का सबसे बड़ा प्रमाण कहा है।

अलग-अलग जवाबों वाले सवाल क्यों? आज का युग सूचना-क्रांति का है। इस युग में धीरे-धीरे मनुष्य सूचनाओं में तब्दील हो रहा है। भाषा और साहित्य की पढ़ाई में भी— 'हमने समझ के बदले थोड़े वक्त की जानकारी के अंबार को अपना लिया है। इस प्रक्रिया को उलटना होगा। खासकर इस वक्त जब वह सब कुछ जो याद किया जा सकता है, फट पड़ने को तैयार है' (रा. पा. की रूपरेखा-2005, प्राक्कथन)। भारत अपने मूल स्वभाव में ही बहुभाषी और बहुलतावादी संस्कृतिसंपन्न देश है। ऐसे में यहाँ के युवा होते बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता की पहचान किसी एक पैमाने या तयशुदा उत्तर से संभव नहीं। उन्हें जाँचने-परखने के लिए तो उनकी अभिव्यक्ति विशेष की पहचान कर उसे तराशना ही भाषा

© NCERT not to be republished

साहित्य के मूल्यांकन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग होना चाहिए। इसी को ध्यान में रखकर निर्मित प्रश्न अभ्यास विद्यार्थियों की सृजनात्मकता और उनकी अलग-अलग विशेषता को पहचानने और बढ़ावा देने का माध्यम बन सकते हैं।

उपर्युक्त तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए इस पुस्तक को **काव्य खंड** और **गद्य खंड** (दो खंडों) में बाँटा गया है। **काव्य खंड** को पहले रखने का कारण कविता का सबसे पुरानी विधा होने के साथ-साथ विद्यार्थियों का इसके प्रति स्वाभाविक रुझान भी है। कक्षा-10 तक विद्यार्थी ऐतिहासिक क्रम में कवियों से परिचित हो चुका होता है, इसलिए **काव्य खंड** का क्रम निर्धारण सरलता से कठिनाई के सामान्य शैक्षिक नियम को ध्यान में रख कर किया गया है। अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों में गुजराती के वरिष्ठ कवि उमाशंकर जोशी और उर्दू के शायर फ़िराक गोरखपुरी को स्थान दिया गया है। हिंदी कविता के साथ भारतीय भाषाओं के इन कवियों को पढ़ना बहुभाषी बहुक्षेत्रीय परिवेश में एक ही रचनात्मक भाव-भूमि की पहचान के रूप में देखा जा सकता है।

गद्य खंड में आर्थिक चिंतन, दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, संस्कृति और विज्ञान, पर्यावरण और प्रकृति, लुप्त प्राय प्राचीन कला, विभाजन की दरार से झाँकते मनुष्य, फ़िल्मी चरित्र में आम आदमी पर केंद्रित रचनाओं को सम्मिलित किया गया है।

वर्तमान समय में विकास को परिभाषित करता बाज़ार, सशक्त माध्यम के रूप में फ़िल्म और उन सबसे बनता समाज हमारी सोच के केंद्र में है। जहाँ एक ओर बाज़ार ने रोज़गार और व्यापार के अवसर दिए हैं, वहीं दूसरी ओर हमें अपनी गिरफ्त में लेता जा रहा है। नतीजा यह कि दिनोदिन हमारे सोचने-विचारने की दिशा अर्थ-केंद्रित होती जा रही है। जैनेंद्र का *बाज़ार-दर्शन* जैसा पाठ यह अवसर देता है कि हम बाज़ार में रहते हुए बाज़ारवाद से मुक्ति के रास्ते तलाशें।

स्वतंत्रता प्राप्ति और स्वतंत्र भारत की परिकल्पना में जिन लोगों की भूमिका महत्त्वपूर्ण है उनमें गांधी और आंबेडकर का नाम सबसे पहले आता हैं। 'जातिभेद का उच्छेद' नामक महत्त्वपूर्ण भाषण जो काफी विरोधों के बाद भी छपा और बहुत लोकप्रिय हुआ; उसके दो अंश यहाँ लिए गए हैं जो वास्तव में पिछड़े वर्गों को ध्यान में रखते हुए जाति-विमर्श पर विचार के बहाने स्वतंत्रता, समता और बंधुता पर आधारित आदर्श समाज को विचारने का अवसर देते हैं।

पुस्तक की प्रस्तुति 'एक नयी किताब' का सबसे नया और अहम हिस्सा होती है– खासतौर से तब जब पाठ्यचर्या बच्चों के अपने परिवेश और जीते जागते संदर्भों से जोड़कर शिक्षा की बात कर रही है। इस पुस्तक का चयन, प्रश्न-अभ्यास और साज-सज्जा-तीनों ही नए शैक्षिक परिवेश का निर्माण करने में सहायक होंगे।

पुस्तक में ऐसे अभ्यास भी दिए गए हैं जिनके कारण इस बार 'आरोह भाग-1' और 'वितान भाग-1' को पढ़ने की ज़रूरत पड़ सकती है। साथ ही ये अभ्यास पुस्तकालयों में पड़ी बहुत-सी अनछुई किताबों की दुनिया तक ले जाने को विवश करेंगे और नयी पुस्तकों, अखबारों व रोज़ की खबरों के प्रति सचेत कराने में समर्थ होंगे। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा(2005) में इन बातों पर खासा बल है।

अभिव्यक्ति की अपनी भाषा को आमंत्रित करती 'आरोह भाग-2' आपके हाथों में है जिसके संशोधन परिवर्धन के लिए सुझावों का निरंतर स्वागत रहेगा। ❑❑❑

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू., नयी दिल्ली

मुख्य सलाहकार

पुरुषोत्तम अग्रवाल, *पूर्व प्रोफ़ेसर,* भारतीय भाषा केंद्र, जे.एन.यू. नयी दिल्ली

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *पूर्व प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

सदस्य

अनूप कुमार, *प्रोफ़ेसर,* क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भुवनेश्वर

अनामिका, *रीडर,* सत्यवती कॉलेज, नयी दिल्ली

उषा शर्मा, *प्रोफ़ेसर,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

दिलीप सिंह, *प्रोफ़ेसर एवं कुल सचिव,* दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, चेन्नई

नीलकंठ कुमार, *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

नीरजा रानी, *पी.जी.टी.,* चंद्र आर्य विद्यामंदिर, ईस्ट ऑफ़ कैलाश, नयी दिल्ली

रवीन्द्र कुमार पाठक, *पी.जी.टी,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, भारतनगर, दिल्ली

रवीन्द्र त्रिपाठी, *पत्रकार,* नयी दिल्ली

रामबक्ष, *प्रोफ़ेसर,* जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली

संजीव कुमार, *वरिष्ठ प्रवक्ता,* देशबन्धु कॉलेज, नयी दिल्ली

समीर वरण नंदी, *प्रवक्ता,* बी.एच.ई.एल. स्कूल, हरिद्वार

सदस्य-समन्वयक

संध्या सिंह, *प्रोफ़ेसर,* भाषा शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

© NCERT not to be republished

आभार

इस पुस्तक में रचनाओं को सम्मिलित करने की स्वीकृति देने के लिए सभी रचनाकारों/परिजनों, प्रकाशकों तथा 'शिरीष के फूल' के फोटोग्राफ़ के लिए शमशेर अहमद खान के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तक के निर्माण में सहयोग के लिए हम विशेष आमंत्रित शारदा कुमारी, *प्रवक्ता,* डाइट, आर. के.पुरम, नयी दिल्ली तथा पुस्तक के निर्माण में तकनीकी सहयोग के लिए कम्प्यूटर स्टेशन (भाषा विभाग) के *प्रभारी* परशराम कौशिक; *कॉपी एडीटर* समीना उसमानी, मनोज मोहन सहाय, अवध किशोर सिंह; *प्रूफ़ रीडर* कविता और *डी.टी.पी. ऑपरेटर* कमल कुमार के प्रति आभारी हैं।

© NCERT not to be republished

विषय-क्रम

आमुख iii

यह पुस्तक v

काव्य खंड

1

हरिवंश राय बच्चन 3

1. आत्मपरिचय

2. एक गीत

2

आलोक धन्वा 9

पतंग

3

कुँवर नारायण 15

1. कविता के बहाने

2. बात सीधी थी पर

4

रघुवीर सहाय 21

कैमरे में बंद अपाहिज

5

गजानन माधव मुक्तिबोध 27

सहर्ष स्वीकारा है

6

शमशेर बहादुर सिंह 34

उषा

7

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' 39

बादल राग

8

तुलसीदास 45

1. कवितावली (उत्तर कांड से)

2. लक्ष्मण-मूर्च्छा और राम का विलाप

9

फ़िराक गोरखपुरी 56

1. रुबाइयाँ

2. गज़ल

10

उमाशंकर जोशी 62

1. छोटा मेरा खेत

2. बगुलों के पंख

© NCERT not to be republished

गद्य खंड

11 महादेवी वर्मा — 69
भक्तिन

12 जैनेन्द्र कुमार — 84
बाज़ार दर्शन

13 धर्मवीर भारती — 97
काले मेघा पानी दे

14 फणीश्वर नाथ रेणु — 106
पहलवान की ढोलक

15 विष्णु खरे — 118
चार्ली चैप्लिन यानी हम सब

16 रज़िया सज्जाद ज़हीर — 128
नमक

17 हजारी प्रसाद द्विवेदी — 141
शिरीष के फूल

18 बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर — 151
1. श्रम विभाजन और जाति-प्रथा
2. मेरी कल्पना का आदर्श समाज

© NCERT not to be republished

काव्य खंड

© NCERT
not to be republished

बहादुरशाह ज़फ़र

लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में
किसकी बनी है आलमे-नापायदार में
बुलबुल को बागबाँ से न सय्याद से गिला
किस्मत में कैद लिखी थी, फ़सले बहार में
इन हसरतों से कह दो कहीं और जा बसें
इतनी जगह कहाँ है दिले-दागदार में
इक शाखे-गुल पे बैठ के बुलबुल है शादमाँ
काँटे बिछा दिए हैं दिले-लालहज़ार में
उम्रे-दराज़ माँग के लाए थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गए दो इंतज़ार में
दिन ज़िंदगी के खत्म हुए शाम हो गई
फैला के पाँव सोएँगे कुंजे-मज़ार में
कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़्न के लिए
दो गज़ ज़मीन भी न मिली कूए-यार में

(1857 के 150 वर्ष होने पर)

© NCERT not to be republished

12070CH01

हरिवंश राय बच्चन 1

जन्म : *सन् 1907, इलाहाबाद*

प्रमुख रचनाएँ : *मधुशाला* (1935), *मधुबाला* (1938), *मधुकलश* (1938), *निशा निमंत्रण, एकांत संगीत, आकुल-अंतर, मिलनयामिनी, सतरंगिणी, आरती और अंगारे, नए पुराने झरोखे, टूटी-फूटी कड़ियाँ* (काव्य संग्रह); *क्या भूलूँ क्या याद करूँ, नीड़ का निर्माण फिर, बसेरे से दूर, दशद्वार से सोपान तक* (आत्मकथा चार खंड); *हैमलेट, जनगीता, मैकबेथ* (अनुवाद); *प्रवासी की डायरी* (डायरी)

उनका पूरा वाङ्मय 'बच्चन ग्रंथावली' के नाम से दस खंडों में प्रकाशित।

निधन : *सन् 2003, मुंबई में*

© NCERT not to be republished

पूर्व चलने के बटोही बाट की पहचान कर ले

1942-1952 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, आकाशवाणी के साहित्यिक कार्यक्रमों से संबद्ध, फिर विदेश मंत्रालय में हिंदी विशेषज्ञ रहे। दोनों महायुद्धों के बीच मध्यवर्ग के विक्षुब्ध, विकल मन को बच्चन ने वाणी का वरदान दिया। उन्होंने छायावाद की लाक्षणिक वक्रता के बजाय सीधी-सादी जीवंत भाषा और संवेदनसिक्त गेय शैली में अपनी बात कही। व्यक्तिगत जीवन में घटी घटनाओं की सहज अनुभूति की ईमानदार अभिव्यक्ति बच्चन के यहाँ कविता बनकर प्रकट हुई। यह विशेषता हिंदी काव्य संसार में उनकी विलक्षण लोकप्रियता का मूल आधार है।

मध्ययुगीन फ़ारसी के कवि उमर खय्याम का मस्तानापन हरिवंश राय बच्चन की प्रारंभिक कविताओं विशेषकर मधुशाला में एक अद्‌भुत अर्थ-विस्तार पाता है—जीवन एक तरह का मधुकलश है, दुनिया मधुशाला है, कल्पना साकी और कविता वह प्याला जिसमें ढालकर जीवन पाठक को पिलाया जाता है। कविता का एक घूँट जीवन का एक घूँट है। पूरी तन्मयता से जीवन का घूँट भरें, कड़वा-खट्टा भी सहज भाव से स्वीकार करें तो अंततः एक

सूफ़ियाना-सी बेखयाली मन पर छाएगी, एक के बहाने सारी दुनिया से इश्क हो जाएगा, और तेरा-मेरा के समस्त झगड़े काफ़ूर हो जाएँगे। इसे बच्चन का ***हालावादी*** *दर्शन कहते हैं।*

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उनकी युगबोध-संबंधी कविताएँ जो बाद में लिखी गईं, उनका मूल्यांकन अभी तक कम ही हो पाया है। बच्चन का कवि-रूप सबसे विख्यात है, पर उन्होंने कहानी, नाटक, डायरी आदि के साथ बेहतरीन आत्मकथा भी लिखी है—जो ईमानदार आत्मस्वीकृति और प्रांजल शैली के कारण निरंतर पठनीय बनी हुई है।

यहाँ उनकी कविता ***आत्मपरिचय*** *तथा गीत संग्रह* ***निशा निमंत्रण*** *का एक गीत दिया जा रहा है। अपने को जानना दुनिया को जानने से ज्यादा कठिन है। समाज से व्यक्ति का नाता खट्टा-मीठा तो होता ही है।* ***जगजीवन*** *से पूरी तरह निरपेक्ष रहना संभव नहीं! दुनिया अपने व्यंग्य-बाण और शासन-प्रशासन से चाहे जितना कष्ट दे, पर दुनिया से कटकर मनुष्य रह भी नहीं पाता। क्योंकि उसकी अपनी अस्मिता, अपनी पहचान का उत्स, उसका परिवेश ही उसकी दुनिया है— अपना परिचय देते हुए वह लगातार दुनिया से अपने द्विधात्मक और द्वंद्वात्मक संबंधों का मर्म ही उद्घाटित करता चलता है और पूरी कविता का सारांश एक पंक्ति में यह बनता है कि दुनिया से मेरा संबंध प्रीतिकलह का है, मेरा जीवन विरुद्धों का सामंजस्य है—* ***उन्मादों में अवसाद, रोदन में राग, शीतल वाणी में आग, विरुद्धों का विरोधाभासमूलक*** *सामंजस्य साधते-साधते ही वह बेखुदी, वह मस्ती, वह दीवानगी व्यक्तित्व में उतर आई है कि* ***दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ / बाज़ार से गुज़रा हूँ खरीदार नहीं हूँ*** *— जैसा कुछ कहने का ठस्सा पैदा हुआ है। यह ठस्सा ही छायावादोत्तर गीतिकाव्य का प्राण है। किसी असंभव आदर्श (यूटोपिया) की तलाश में सारी दुनियादारी ठुकराकर उस भाव से दुनिया से इन्हें कोई वास्ता नहीं है। प्रीति-कलह का यही वितान और विरोधाभास का यह विग्रह इन्हें दूर टिमटिमाते तारे की अबूझ रहस्यात्मकता से लहालोट रखता है।* ***निशा निमंत्रण*** *से उद्धृत गीत में प्रकृति के दैनिक परिवर्तनशीलता के संदर्भ में प्राणि-वर्ग (विशेषकर मनुष्य) के धड़कते हृदय को सुनने की काव्यात्मक कोशिश है। बहुत ही सरल सर्वानुभूत बिंबों के ज़रिये किसी अगोचर सत्य की रूहानी छुअन महसूस करा देना बच्चन की जो अलग विशेषता है, यह गीत उसका एक बेहतर नमूना है। किसी प्रिय आलंबन या विषय से भावी साक्षात्कार का आश्वासन ही हमारे प्रयास के पगों की गति में चंचल तेज़ी भर सकता है— अन्यथा हम शिथिलता और फिर जड़ता को प्राप्त होने के अभिशिप्त हो जाते हैं। गीत इस बड़े सत्य के साथ समय के गुज़रते जाने के एहसास में लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कुछ कर गुज़रने का जज़्बा भी लिए हुए है।*

आत्मपरिचय

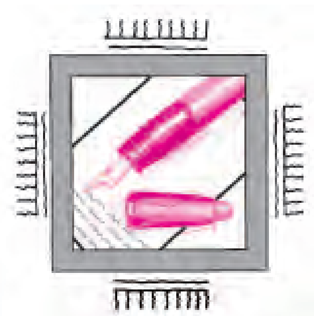

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ;
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!

मैं निज उर के उद्गार लिए फिरता हूँ,
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!

मैं जला हृदय में अग्नि, दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ;
जग भव-सागर तरने को नाव बनाए,
मैं भव मौजों पर मस्त बहा करता हूँ!

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ!

© NCERT not to be republished

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना!
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे?
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!

मैं और, और जग और, कहाँ का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज़ मिटाता;
जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूँ,
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूँ।

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते, छंद बनाना;
क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूँ एक नया दीवाना!

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूँ,
मैं मादकता नि:शेष लिए फिरता हूँ;
जिसको सुनकर जग झूम, झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूँ!

© NCERT not to be republished

दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

हो जाए न पथ में रात कहीं,
मंजिल भी तो है दूर नहीं–
यह सोच थका दिन का पंथी भी जल्दी-जल्दी चलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे–
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

मुझसे मिलने को कौन विकल?
मैं होऊँ किसके हित चंचल?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को, भरता उर में विह्वलता है!
दिन जल्दी-जल्दी ढलता है!

अभ्यास

कविता के साथ

1. कविता एक ओर जग-जीवन का भार लिए घूमने की बात करती है और दूसरी ओर ***मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ***– विपरीत से लगते इन कथनों का क्या आशय है?
2. ***जहाँ पर दाना रहते हैं, वहीं नादान भी होते हैं***– कवि ने ऐसा क्यों कहा होगा?
3. ***मैं और, और जग और कहाँ का नाता***– पंक्ति में ***और*** शब्द की विशेषता बताइए।
4. ***शीतल वाणी में आग***– के होने का क्या अभिप्राय है?
5. बच्चे किस बात की आशा में नीड़ों से झाँक रहे होंगे?
6. ***दिन जल्दी-जल्दी ढलता है***–की आवृत्ति से कविता की किस विशेषता का पता चलता है?

कविता के आसपास

संसार में कष्टों को सहते हुए भी खुशी और मस्ती का माहौल कैसे पैदा किया जा सकता है?

आपसदारी

* जयशंकर प्रसाद की ***आत्मकथ्य*** कविता की कुछ पंक्तियाँ दी जा रही हैं। क्या पाठ में दी गई ***आत्मपरिचय*** कविता से इस कविता का आपको कोई संबंध दिखाई देता है? चर्चा करें।

आत्मकथ्य

मधुप गुन-गुना कर कह जाता कौन कहानी यह अपनी,

*   *   *   *

उसकी स्मृति पाथेय बनी है थके पथिक की पंथा की।
सीवन को उधेड़ कर देखोगे क्यों मेरी कंथा की?
छोटे से जीवन की कैसे बड़ी कथाएँ आज कहूँ?
क्या यह अच्छा नहीं कि औरों की सुनता मैं मौन रहूँ?
सुनकर क्या तुम भला करोगे मेरी भोली आत्म-कथा?
अभी समय भी नहीं, थकी सोई है मेरी मौन व्यथा।

– ***जयशंकर प्रसाद***

© NCERT not to be republished

12070CH02

आलोक धन्वा 2

जन्म : *सन् 1948 ई. मुंगेर (बिहार)*
प्रमुख रचनाएँ : *पहली कविता* **जनता का आदमी**, *1972 में प्रकाशित उसके बाद* **भागी हुई लड़कियाँ, ब्रूनो की बेटियाँ** *से प्रसिद्धि,* **दुनिया रोज़ बनती है** (एकमात्र संग्रह)
प्रमुख सम्मान : *राहुल सम्मान, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् का साहित्य सम्मान, बनारसी प्रसाद भोजपुरी सम्मान, पहल सम्मान।*

जहाँ नदियाँ समुद्र से मिलती हैं वहाँ मेरा क्या है
मैं नहीं जानता लेकिन एक दिन जाना है उधर

सातवें-आठवें दशक में कवि आलोक धन्वा ने बहुत छोटी अवस्था में अपनी गिनी-चुनी कविताओं से अपार लोकप्रियता अर्जित की। सन् 1972-1973 में प्रकाशित इनकी आरंभिक कविताएँ हिंदी के अनेक गंभीर काव्यप्रेमियों को ज़बानी याद रही हैं। आलोचकों का तो मानना है कि उनकी कविताओं ने हिंदी कवियों और कविताओं को कितना प्रभावित किया, इसका मूल्यांकन अभी ठीक से हुआ नहीं है। इतनी व्यापक ख्याति के बावजूद या शायद उसी की वजह से बनी हुई अपेक्षाओं के दबाव के चलते, आलोक धन्वा ने कभी थोक के भाव में लेखन नहीं किया। सन् 72 से लेखन आरंभ करने के बाद उनका पहला और अभी तक का एकमात्र काव्य संग्रह सन् 98 में प्रकाशित हुआ। काव्य संग्रह के अलावा वे पिछले दो दशकों से देश के विभिन्न हिस्सों में सांस्कृतिक एवं सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय रहे हैं। उन्होंने जमशेदपुर में अध्ययन-मंडलियों का संचालन किया और रंगकर्म तथा साहित्य पर कई राष्ट्रीय संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों में अतिथि व्याख्याता के रूप में भागीदारी की है।

© NCERT not to be republished

पाठ्यपुस्तक में ली गई कविता ***पतंग*** *आलोक धन्वा के एकमात्र संग्रह का हिस्सा है। यह एक लंबी कविता है जिसके तीसरे भाग को पाठ्यपुस्तक में शामिल किया गया है।* ***पतंग*** *के बहाने इस कविता में बालसुलभ इच्छाओं एवं उमंगों का सुंदर चित्रण किया गया है। बाल क्रियाकलापों एवं प्रकृति में आए परिवर्तन को अभिव्यक्त करने के लिए सुंदर बिंबों का उपयोग किया गया है। पतंग बच्चों की उमंगों का रंग-बिरंगा सपना है। आसमान में उड़ती हुई पतंग ऊँचाइयों की वे हदें हैं, बालमन जिन्हें छूना चाहता है और उसके पार जाना चाहता है।*

कविता धीरे-धीरे बिंबों की एक ऐसी नयी दुनिया में ले जाती है जहाँ शरद ऋतु का चमकीला इशारा है, जहाँ तितलियों की रंगीन दुनिया है, दिशाओं के मृदंग बजते हैं। जहाँ छतों के खतरनाक कोने से गिरने का भय है तो दूसरी ओर भय पर विजय पाते बच्चे हैं जो गिर-गिरकर सँभलते हैं और पृथ्वी का हर कोना खुद-ब-खुद उनके पास आ जाता है। वे हर बार नयी-नयी पतंगों को सबसे ऊँचा उड़ाने का हौसला लिए फिर-फिर भादो(अँधेरे)के बाद के शरद(उजाला)की प्रतीक्षा कर रहे हैं। क्या आप भी उनके साथ हैं?

© NCERT not to be republished

पतंग

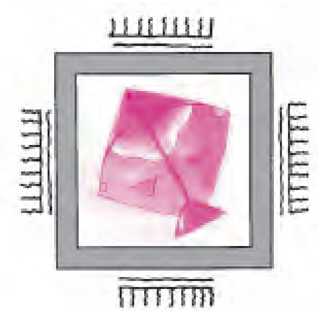

सबसे तेज़ बौछारें गयीं भादो गया
सवेरा हुआ
खरगोश की आँखों जैसा लाल सवेरा
शरद आया पुलों को पार करते हुए
अपनी नयी चमकीली साइकिल तेज़ चलाते हुए
घंटी बजाते हुए ज़ोर-ज़ोर से
चमकीले इशारों से बुलाते हुए
पतंग उड़ाने वाले बच्चों के झुंड को
चमकीले इशारों से बुलाते हुए और
आकाश को इतना मुलायम बनाते हुए
कि पतंग ऊपर उठ सके–
दुनिया की सबसे हलकी और रंगीन चीज़ उड़ सके
दुनिया का सबसे पतला कागज़ उड़ सके–
बाँस की सबसे पतली कमानी उड़ सके–
कि शुरू हो सके सीटियों, किलकारियों और
तितलियों की इतनी नाज़ुक दुनिया

जन्म से ही वे अपने साथ लाते हैं कपास
पृथ्वी घूमती हुई आती है उनके बेचैन पैरों के पास
जब वे दौड़ते हैं बेसुध
छतों को भी नरम बनाते हुए
दिशाओं को मृदंग की तरह बजाते हुए
जब वे पेंग भरते हुए चले आते हैं
डाल की तरह लचीले वेग से अकसर

© NCERT not to be republished

छतों के खतरनाक किनारों तक–
उस समय गिरने से बचाता है उन्हें
सिर्फ़ उनके ही रोमांचित शरीर का संगीत
पतंगों की धड़कती ऊँचाइयाँ उन्हें थाम लेती हैं महज़ एक धागे के सहारे
पतंगों के साथ-साथ वे भी उड़ रहे हैं
अपने रंध्रों के सहारे

अगर वे कभी गिरते हैं छतों के खतरनाक किनारों से
और बच जाते हैं तब तो
और भी निडर होकर सुनहले सूरज के सामने आते हैं
पृथ्वी और भी तेज़ घूमती हुई आती है
उनके बेचैन पैरों के पास।

अभ्यास

कविता के साथ

1. 'सबसे तेज़ बौछारें गयीं, भादो गया' के बाद प्रकृति में जो परिवर्तन कवि ने दिखाया है, उसका वर्णन अपने शब्दों में करें।
2. सोचकर बताएँ कि पतंग के लिए ***सबसे हलकी और रंगीन चीज़, सबसे पतला कागज़, सबसे पतली कमानी*** जैसे विशेषणों का प्रयोग क्यों किया है?
3. बिंब स्पष्ट करें–

    सबसे तेज़ बौछारें गयीं भादो गया
    सवेरा हुआ
    खरगोश की आँखों जैसा लाल सवेरा
    शरद आया पुलों को पार करते हुए
    अपनी नयी चमकीली साइकिल तेज़ चलाते हुए
    घंटी बजाते हुए ज़ोर-ज़ोर से
    चमकीले इशारों से बुलाते हुए और
    आकाश को इतना मुलायम बनाते हुए
    कि पतंग ऊपर उठ सके।

4. ***जन्म से ही वे अपने साथ लाते हैं कपास***– कपास के बारे में सोचें कि कपास से बच्चों का क्या संबंध बन सकता है।
5. ***पतंगों के साथ-साथ वे भी उड़ रहे हैं***– बच्चों का उड़ान से कैसा संबंध बनता है?
6. निम्नलिखित पंक्तियों को पढ़ कर प्रश्नों का उत्तर दीजिए।

    (क) छतों को भी नरम बनाते हुए
    दिशाओं को मृदंग की तरह बजाते हुए

    (ख) अगर वे कभी गिरते हैं छतों के खतरनाक किनारों से
    और बच जाते हैं तब तो
    और भी निडर होकर सुनहले सूरज के सामने आते हैं।

* दिशाओं को मृदग की तरह बजाने का क्या तात्पर्य है?
* जब पतंग सामने हो तो छतों पर दौड़ते हुए क्या आपको छत कठोर लगती है?
* खतरनाक परिस्थितियों का सामना करने के बाद आप दुनिया की चुनौतियों के सामने स्वयं को कैसा महसूस करते हैं?

© NCERT not to be republished

कविता के आसपास

1. आसमान में रंग-बिरंगी पतंगों को देखकर आपके मन में कैसे खयाल आते हैं? लिखिए
2. 'रोमांचित शरीर का संगीत' का जीवन के लय से क्या संबंध है?
3. 'महज़ एक धागे के सहारे, पतंगों की धड़कती ऊँचाइयाँ' उन्हें (बच्चों को) कैसे थाम लेती हैं? चर्चा करें।

आपकी कविता

1. हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में तुलसी, जायसी, मतिराम, द्विजदेव, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने भी शरद ऋतु का सुंदर वर्णन किया है। आप उन्हें तलाश कर कक्षा में सुनाएँ और चर्चा करें कि पतंग कविता में शरद ऋतु वर्णन उनसे किस प्रकार भिन्न है?
2. आपके जीवन में शरद ऋतु क्या मायने रखती है?

© NCERT not to be republished

12070CH03

कुँवर नारायण 3

जन्म : 19 सितंबर, सन् 1927 (उत्तर प्रदेश)

प्रमुख रचनाएँ : *चक्रव्यूह* (1956), *परिवेश:हम तुम, अपने सामने, कोई दूसरा नहीं, इन दिनों* (काव्य संग्रह); *आत्मजयी* (प्रबंध काव्य); *आकारों के आस-पास* (कहानी संग्रह); *आज और आज से पहले* (समीक्षा); *मेरे साक्षात्कार* (सामान्य)

प्रमुख पुरस्कार : *साहित्य अकादेमी पुरस्कार, कुमारन आशान पुरस्कार, व्यास सम्मान, प्रेमचंद पुरस्कार, लोहिया सम्मान, कबीर सम्मान, ज्ञानपीठ पुरस्कार*

न जाने कब से बंद / एक दिन इस तरह खुला घर का दरवाज़ा /
जैसे गर्द से ढँकी / एक पुरानी किताब

गर्द से ढँकी हर पुरानी किताब खोलने की बात कहने वाले कुँवर नारायण ने सन् 1950 के आस-पास काव्य-लेखन की शुरुआत की। उन्होंने कविता के अलावा चिंतनपरक लेख, कहानियाँ और सिनेमा तथा अन्य कलाओं पर समीक्षाएँ भी लिखीं हैं, किंतु कविता की विधा को उनके सृजन-कर्म में हमेशा प्राथमिकता प्राप्त रही। नयी कविता के दौर में, जब प्रबंध काव्य का स्थान प्रबंधत्व की दावेदार लंबी कविताएँ लेने लगीं तब कुँवर नारायण ने ***आत्मजयी*** *जैसा प्रबंध काव्य रचकर भरपूर प्रतिष्ठा प्राप्त की। आलोचक मानते हैं कि उनकी "कविता में व्यर्थ का उलझाव, अखबारी सतहीपन और वैचारिक धुंध के बजाय संयम, परिष्कार और साफ़-सुथरापन है।" भाषा और विषय की विविधता उनकी कविताओं के विशेष गुण माने जाते हैं। उनमें यथार्थ का खुरदरापन भी मिलता है और उसका सहज सौंदर्य भी। सीधी घोषणाएँ और फ़ैसले उनकी कविताओं में नहीं मिलते क्योंकि जीवन को मुकम्मल तौर पर समझने वाला एक खुलापन उनके कवि-स्वभाव की मूल विशेषता है। इसीलिए संशय, संभ्रम प्रश्नाकुलता उनकी कविता के बीज शब्द हैं।*

© NCERT not to be republished

कुँवर जी पूरी तरह नागर संवेदना के कवि हैं। विवरण उनके यहाँ नहीं के बराबर है, पर वैयक्तिक और सामाजिक ऊहापोह का तनाव पूरी व्यंजकता में सामने आता है। एक पंक्ति में कहें तो इनकी तटस्थ वीतराग दृष्टि नोच-खसोट, हिंसा-प्रतिहिंसा से सहमे हुए एक संवेदनशील मन के आलोड़नों के रूप में पढ़ी जा सकती है।

यहाँ पर कुँवर नारायण की दो कविताएँ ली गई हैं। पहली कविता है– ***कविता के बहाने*** *जो* ***इन दिनों*** *संग्रह से ली गई है। आज का समय कविता के वजूद को लेकर आशंकित है। शक है कि यांत्रिकता के दबाव से कविता का अस्तित्व नहीं रहेगा। ऐसे में यह कविता–कविता की अपार संभावनाओं को टटोलने का एक अवसर देती है।* ***कविता के बहाने*** *यह एक यात्रा है जो चिड़िया, फूल से लेकर बच्चे तक की है। एक ओर प्रकृति है दूसरी ओर भविष्य की ओर कदम बढ़ाता बच्चा। कहने की आवश्यकता नहीं कि चिड़िया की उड़ान की सीमा है, फूल के खिलने के साथ उसकी परिणति निश्चित है, लेकिन बच्चे के सपने असीम है। बच्चों के खेल में किसी प्रकार की सीमा का कोई स्थान नहीं होता। कविता भी शब्दों का खेल है और शब्दों के इस खेल में जड़, चेतन, अतीत, वर्तमान और भविष्य सभी उपकरण मात्र हैं। इसीलिए जहाँ कहीं रचनात्मक ऊर्जा होगी वहाँ सीमाओं के बंधन खुद-ब-खुद टूट जाते हैं। वो चाहें घर की सीमा हो, भाषा की सीमा हो या फिर समय की ही क्यों न हो।*

दूसरी कविता है ***बात सीधी थी पर*** *जो* ***कोई दूसरा नहीं*** *संग्रह में संकलित है। कविता में कथ्य और माध्यम के द्वंद्व उकेरते हुए भाषा की सहजता की बात की गई है। हर बात के लिए कुछ खास शब्द नियत होते हैं ठीक वैसे ही जैसे हर पेंच के लिए एक निश्चित खाँचा होता है। अब तक जिन शब्दों को हम एक-दूसरे के पर्याय के रूप में जानते रहे हैं उन सब के भी अपने विशेष अर्थ होते हैं। अच्छी बात या अच्छी कविता का बनना सही बात का सही शब्द से जुड़ना होता है और जब ऐसा होता है तो किसी दबाव या अतिरिक्त मेहनत की ज़रूरत नहीं होती वह सहूलियत के साथ हो जाता है।*

© NCERT not to be republished

कविता के बहाने

कविता एक उड़ान है चिड़िया के बहाने
कविता की उड़ान भला चिड़िया क्या जाने
बाहर भीतर
इस घर, उस घर
कविता के पंख लगा उड़ने के माने
चिड़िया क्या जाने?

© NCERT not to be republished

कविता एक खिलना है फूलों के बहाने
कविता का खिलना भला फूल क्या जाने!
बाहर भीतर
इस घर, उस घर
बिना मुरझाए महकने के माने
फूल क्या जाने?
कविता एक खेल है बच्चों के बहाने
बाहर भीतर
यह घर, वह घर
सब घर एक कर देने के माने
बच्चा ही जाने।

बात सीधी थी पर

बात सीधी थी पर एक बार
भाषा के चक्कर में
ज़रा टेढ़ी फँस गई।

उसे पाने की कोशिश में
भाषा को उलटा पलटा
तोड़ा मरोड़ा
घुमाया फिराया
कि बात या तो बने
या फिर भाषा से बाहर आए–
लेकिन इससे भाषा के साथ साथ
बात और भी पेचीदा होती चली गई।

सारी मुश्किल को धैर्य से समझे बिना
मैं पेंच को खोलने के बजाए
उसे बेतरह कसता चला जा रहा था
क्यों कि इस करतब पर मुझे
साफ़ सुनाई दे रही थी
तमाशबीनों की शाबाशी और वाह वाह।

आखिरकार वही हुआ जिसका मुझे डर था
ज़ोर ज़बरदस्ती से
बात की चूड़ी मर गई
और वह भाषा में बेकार घूमने लगी!

हार कर मैंने उसे कील की तरह
उसी जगह ठोंक दिया।

ऊपर से ठीकठाक
पर अंदर से
न तो उसमें कसाव था
न ताकत!
बात ने, जो एक शरारती बच्चे की तरह
मुझसे खेल रही थी,
मुझे पसीना पोंछते देख कर पूछा–
"क्या तुमने भाषा को
सहूलियत से बरतना कभी नहीं सीखा?"

अभ्यास

कविता के साथ

© NCERT not to be republished

1. इस कविता के बहाने बताएँ कि 'सब घर एक कर देने के माने' क्या है?
2. 'उड़ने' और 'खिलने' का कविता से क्या संबंध बनता है?
3. कविता और बच्चे को समानांतर रखने के क्या कारण हो सकते हैं?
4. कविता के संदर्भ में 'बिना मुरझाए महकने के माने' क्या होते हैं?
5. 'भाषा को सहूलियत' से बरतने से क्या अभिप्राय है?
6. बात और भाषा परस्पर जुड़े होते हैं, किंतु कभी-कभी भाषा के चक्कर में 'सीधी बात भी टेढ़ी हो जाती है' कैसे?
7. बात (कथ्य) के लिए नीचे दी गई विशेषताओं का उचित बिंबों/मुहावरों से मिलान करें।

बिंब/मुहावरा	विशेषता
(क) बात की चूड़ी मर जाना	कथ्य और भाषा का सही सामंजस्य बनना
(ख) बात की पेंच खोलना	बात का पकड़ में न आना
(ग) बात का शरारती बच्चे की तरह खेलना	बात का प्रभावहीन हो जाना
(घ) पेंच को कील की तरह ठोंक देना	बात में कसावट का न होना
(ङ) बात का बन जाना	बात को सहज और स्पष्ट करना

कविता के आसपास

* बात से जुड़े कई मुहावरे प्रचलित हैं। कुछ मुहावरों का प्रयोग करते हुए लिखें।

व्याख्या करें

* ज़ोर ज़बरदस्ती से
  बात की चूड़ी मर गई
  और वह भाषा में बेकार घूमने लगी।

चर्चा कीजिए

* आधुनिक युग में कविता की संभावनाओं पर चर्चा कीजिए?
* चूड़ी, कील, पेंच आदि मूर्त्त उपमानों के माध्यम से कवि ने कथ्य की अमूर्त्तता को साकार किया है। भाषा को समृद्ध एवं संप्रेषणीय बनाने में, बिबों और उपमानों के महत्त्व पर परिसंवाद आयोजित करें।

© NCERT not to be republished

आपसदारी

1. सुंदर है सुमन, विहग सुंदर
   मानव तुम सबसे सुंदरतम।

   पंत की इस कविता में प्रकृति की तुलना में मनुष्य को अधिक सुंदर और समर्थ बताया गया है। 'कविता के बहाने' कविता में से इस आशय को अभिव्यक्त करने वाले बिंदुओं की तलाश करें।
2. प्रतापनारायण मिश्र का निबंध 'बात' और नागार्जुन की कविता 'बातें' ढूँढ़ कर पढ़ें।

12070CH04

रघुवीर सहाय 4

जन्म : *सन् 1929, लखनऊ (उत्तर प्रदेश)*

प्रमुख रचनाएँ : *अज्ञेय द्वारा संपादित* **दूसरा सप्तक** *(1951) में, आरंभिक कविताएँ, महत्त्वपूर्ण काव्य-संकलन* **सीढ़ियों पर धूप में, आत्महत्या के विरुद्ध, हँसो-हँसो जल्दी हँसो**

पत्रकारिता : *ऑल इंडिया रेडियो के हिंदी समाचार विभाग से संबद्ध रहे, फिर हैदराबाद से निकलने वाली पत्रिका* **कल्पना** *और उसके बाद दैनिक* **नवभारत टाइम्स** *तथा* **दिनमान** *से संबद्ध रहे*

सम्मान : *साहित्य अकादेमी पुरस्कार*

निधन : *सन् 1990, दिल्ली में*

कुछ होगा / कुछ होगा अगर मैं बोलूगाँ /
न टूटे न टूटे तिलिस्म सत्ता का / मेरे अंदर एक कायर टूटेगा

रघुवीर सहाय समकालीन हिंदी कविता के संवेदनशील 'नागर' चेहरा हैं। सड़क, चौराहा, दफ़्तर, अखबार, संसद, बस, रेल और बाज़ार की बेलौस भाषा में उन्होंने कविता लिखी। घर-मुहल्ले के चरित्रों पर कविता लिखकर इन्हें हमारी चेतना का स्थायी नागरिक बनाया। हत्या-लूटपाट और आगज़नी, राजनैतिक भ्रष्टाचार और छल-छद्म इनकी कविता में उतरकर खोजी पत्रकारिता की सनसनीखेज रपटें नहीं रह जाते, आत्मान्वेषण का माध्यम बन जाते हैं। यह ठीक है कि पेशे से वे पत्रकार थे, लेकिन वे सिर्फ़ पत्रकार ही नहीं , सिद्ध कथाकार और कवि भी थे। कविता को उन्होंने एक कहानीपन और एक नाटकीय वैभव दिया।

जातीय या वैयक्तिक स्मृतियाँ उनके यहाँ नहीं के बराबर हैं। इसलिए उनके दोनों पाँव वर्तमान में ही गड़े हैं। बावजूद इसके, मार्मिक उजास और व्यंग्य-बुझी खुरदरी मुसकानों से उनकी कविता पटी पड़ी है। छंदानुशासन के लिहाज़ से भी वे अनुपम हैं पर ज़्यादातर बातचीत की सहज शैली में ही उन्होंने लिखा और बखूबी लिखा।

© NCERT not to be republished

बतौर पत्रकार और कवि घटनाओं में निहित विडंबना और त्रासदी को भी उन्होंने देखा। रघुवीर सहाय की कविताओं की दूसरी विशेषता है छोटे या लघु की महत्ता का स्वीकार। वे महज़ बड़े कहे जाने वाले विषयों या समस्याओं पर ही दृष्टि नहीं डालते, बल्कि जिनको समाज में हाशिए पर रखा जाता है, उनके अनुभवों को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाते हैं। रघुवीर जी ने भारतीय समाज में ताकतवरों की बढ़ती हैसियत और सत्ता के खिलाफ़ भी साहित्य और पत्रकारिता के पाठकों का ध्यान खींचा। 'रामदास' नाम की उनकी कविता आधुनिक हिंदी कविता की एक महत्त्वपूर्ण रचना मानी जाती है।

अत्यंत साधारण और अनायास-सी प्रतीत होनेवाली शैली में समाज की दारुण विडंबनाओं को पकड़ने की जो कला रघुवीर सहाय की कविताओं में मिलती है, उसका प्रतिनिधि उदाहरण है यहाँ प्रस्तुत कविता **कैमरे में बंद अपाहिज** *जो* **लोग भूल गये हैं** *संग्रह से ली गई है। शारीरिक चुनौती को झेलते व्यक्ति से टेलीविज़न-कैमरे के सामने किस तरह के सवाल पूछे जाएँगे और कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उससे कैसी भंगिमा की अपेक्षा की जाएगी—इसका लगभग सपाट तरीके से बयान करते हुए कवि ने एक तरह से पीड़ा के साथ दृश्य-संचार माध्यम के संबंध को रेखांकित किया है। किसी की पीड़ा को बहुत बड़े दर्शक वर्ग तक पहुँचाने वाले व्यक्ति को उस पीड़ा के प्रति स्वयं संवेदनशील होने और दूसरों को संवेदनशील बनाने का दावेदार होना चाहिए। लेकिन विडंबना यह है कि आप जब पीड़ा को पर्दे पर उभारने का प्रयास करते हैं, तब कारोबारी दबाव के तहत आपका रवैया संवेदनहीन हो जाता है। सहाय जी की यह कविता टेलीविज़न स्टूडियो के भीतर की दुनिया को उभारती ज़रूर है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि इसे सिर्फ़ टेलीविज़न माध्यम से जोड़कर देखा जाए। अपनी व्यंजना में यह कविता हर ऐसे व्यक्ति की ओर इशारा करती है, जो दुख-दर्द, यातना-वेदना को बेचना चाहता है।*

इस कविता को शारीरिक चुनौती झेलते लोगों के प्रति संवेदनशील नज़रिया अपनाने के लिए प्रेरित करते पाठ के रूप में भी देखा जा सकता है। इसके लिए कवि ने धुर संवेदनहीनता को रेखांकित करने का तरीका अपनाया है। वह दिखलाता है कि किस तरह करुणा जगाने के मकसद से शुरू हुआ कार्यक्रम क्रूर बन जाता है।

कैमरे में बंद अपाहिज

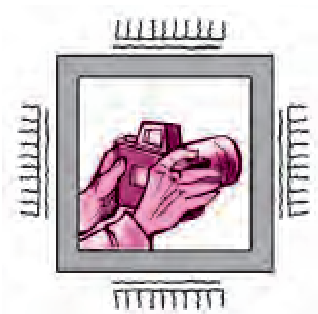

हम दूरदर्शन पर बोलेंगे
हम समर्थ शक्तिवान
हम एक दुर्बल को लाएँगे
एक बंद कमरे में

उससे पूछेंगे तो आप क्या अपाहिज हैं?
तो आप क्यों अपाहिज हैं?
आपका अपाहिजपन तो दुख देता होगा
देता है?
(कैमरा दिखाओ इसे बड़ा बड़ा)
हाँ तो बताइए आपका दुख क्या है
जल्दी बताइए वह दुख बताइए
बता नहीं पाएगा

सोचिए
बताइए
आपको अपाहिज होकर कैसा लगता है
कैसा
यानी कैसा लगता है
(हम खुद इशारे से बताएँगे कि क्या ऐसा?)
सोचिए
बताइए
थोड़ी कोशिश करिए
(यह अवसर खो देंगे?)
आप जानते हैं कि कार्यक्रम रोचक बनाने के वास्ते

© NCERT not to be republished

हम पूछ-पूछकर उसको रुला देंगे
इंतज़ार करते हैं आप भी उसके रो पड़ने का
करते हैं?
(यह प्रश्न पूछा नहीं जाएगा)

फिर हम परदे पर दिखलाएँगे
फूली हुई आँख की एक बड़ी तसवीर
बहुत बड़ी तसवीर
और उसके होंठों पर एक कसमसाहट भी
(आशा है आप उसे उसकी अपंगता की पीड़ा मानेंगे)
एक और कोशिश
दर्शक
धीरज रखिए
देखिए
हमें दोनों एक संग रुलाने हैं

© NCERT not to be republished

आप और वह दोनों
(कैमरा
बस करो
नहीं हुआ
रहने दो
परदे पर वक्त की कीमत है)
अब मुसकुराएँगे हम

आप देख रहे थे सामाजिक उद्देश्य से युक्त कार्यक्रम
(बस थोड़ी ही कसर रह गई)
धन्यवाद।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

कविता के साथ

1. कविता में कुछ पंक्तियाँ कोष्ठकों में रखी गई हैं—आपकी समझ से इसका क्या औचित्य है?
2. ***कैमरे में बंद अपाहिज*** करुणा के मुखौटे में छिपी क्रूरता की कविता है—विचार कीजिए।
3. ***हम समर्थ शक्तिवान*** और ***हम एक दुर्बल को लाएँगे*** पंक्ति के माध्यम से कवि ने क्या व्यंग्य किया है?
4. यदि शारीरिक रूप से चुनौती का सामना कर रहे व्यक्ति और दर्शक, दोनों एक साथ रोने लगेंगे, तो उससे प्रश्नकर्ता का कौन-सा उद्देश्य पूरा होगा?
5. ***परदे पर वक्त की कीमत है*** कहकर कवि ने पूरे साक्षात्कार के प्रति अपना नज़रिया किस रूप में रखा है?

कविता के आसपास

1. यदि आपको शारीरिक चुनौती का सामना कर रहे किसी मित्र का परिचय लोगों से करवाना हो, तो किन शब्दों में करवाएँगी?
2. ***सामाजिक उद्देश्य से युक्त*** ऐसे कार्यक्रम को देखकर आपको कैसा लगेगा? अपने विचार संक्षेप में लिखें।

3. यदि आप इस कार्यक्रम के दर्शक हैं तो टी.वी. पर ऐसे सामाजिक कार्यक्रम को देखकर एक पत्र में अपनी प्रतिक्रिया दूरदर्शन निदेशक को भेजें।
4. नीचे दिए गए खबर के अंश को पढ़िए और बिहार के इस ***बुधिया*** से एक काल्पनिक साक्षात्कार कीजिए–

उम्र पाँच साल, संपूर्ण रूप से विकलांग और दौड़ गया पाँच किलोमीटर। सुनने में थोड़ा अजीब लगता है, लेकिन यह कारनामा कर दिखाया है पवन ने। बिहारी बुधिया के नाम से प्रसिद्ध पवन जन्म से ही विकलांग है। इसके दोनों हाथ का पुलवा नहीं है, जबकि पैर में सिर्फ़ एड़ी ही है।

पवन ने रविवार को पटना के कारगिल चौक से सुबह 8.40 पर दौड़ना शुरू किया। डाकबंगला रोड, तारामंडल और आर ब्लाक होते हुए पवन का सफ़र एक घंटे बाद शहीद स्मारक पर जाकर खत्म हुआ। पवन द्वारा तय की गई इस दूरी के दौरान 'उम्मीद स्कूल' के तकरीबन तीन सौ बच्चे साथ दौड़ कर उसका हौसला बढ़ा रहे थे। सड़क किनारे खड़े दर्शक यह देखकर हतप्रभ थे कि किस तरह एक विकलांग बच्चा जोश एवं उत्साह के साथ दौड़ता चला जा रहा है। जहानाबाद ज़िले का रहने वाला पवन नवरसना एकेडमी, बेउर में कक्षा एक का छात्र है। असल में पवन का सपना उड़ीसा के बुधिया जैसा करतब दिखाने का है। कुछ माह पूर्व बुधिया 65 किलोमीटर दौड़ चुका है। लेकिन बुधिया पूरी तरह से स्वस्थ है जबकि पवन पूरी तरह से विकलांग। पवन का सपना कश्मीर से कन्याकुमारी तक की दूरी पैदल तय करने का है।

–9 अक्तूबर, 2006 हिंदुस्तान से साभार

12070CH05

गजानन माधव मुक्तिबोध 5

जन्म : *13 नवंबर सन् 1917, श्योपुर, ग्वालियर (मध्य प्रदेश)*

प्रमुख रचनाएँ : *चाँद का मुँह टेढ़ा है, भूरी-भूरी खाक धूल (कविता संग्रह); काठ का सपना, विपात्र, सतह से उठता आदमी (कथा साहित्य); कामायनी-एक पुनर्विचार, नयी कविता का आत्मसंघर्ष, नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, (अब 'आखिर रचना क्यों' नाम से) समीक्षा की समस्याएँ, एक साहित्यिक की डायरी (आलोचना); भारत : इतिहास और संस्कृति*

निधन : *11 सितंबर सन् 1964, नयी दिल्ली में*

© NCERT not to be republished

हमारी हार का बदला चुकाने आएगा, संकल्पधर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर, प्रकट होकर विकट हो जाएगा।

हार का बदला चुकाने वाले संकल्पधर्मा कवि मुक्तिबोध का पूरा जीवन संघर्ष में बीता। उन्होंने 20 वर्ष की छोटी उम्र में बड़नगर मिडिल स्कूल में मास्टरी की। तत्पश्चात शुजालपुर, उज्जैन, कोलकाता, इंदौर, मुंबई, बंगलौर, बनारस, जबलपुर, राजनाँदगाँव आदि स्थानों पर मास्टरी से पत्रकारिता तक का काम किया। कुछ समय तक पाठ्यपुस्तकें भी लिखीं।

छायावाद और स्वच्छंदतावादी कविता के बाद जब नयी कविता आई तो मुक्तिबोध उसके अगुआ कवियों में से एक थे। मराठी संरचना से प्रभावित लंबे वाक्यों ने उनकी कविता को आम पाठक के लिए कठिन बनाया लेकिन उनमें भावनात्मक और विचारात्मक ऊर्जा अटूट थी, जैसे कोई नैसर्गिक अंत:स्रोत हो जो कभी चुकता ही नहीं बल्कि लगातार अधिकाधिक वेग और तीव्रता के साथ उमड़ता चला आता है। यह ऊर्जा अनेकानेक कल्पना-चित्रों और फैंटेसियों का आकार ग्रहण कर लेती है। मुक्तिबोध की रचनात्मक ऊर्जा

का एक बहुत बड़ा अंश आलोचनात्मक लेखन और साहित्य संबंधी चिंतन में सक्रिय रहा। वे एक समर्थ पत्रकार भी थे। इसके अलावा राजनैतिक विषयों, अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य तथा देश की आर्थिक समस्याओं पर लगातार लिखा है। कवि शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में उनकी कविता–'अद्‌भुत संकेतों भरी, जिज्ञासाओं से अस्थिर, कभी-दूर से शोर मचाती कभी कानों में चुपचाप राज़ की बातें कहती चलती है। हमारी बातें हमको सुनाती है। हम अपने को एकदम चकित होकर देखते हैं और पहले से अधिक पहचानने लगते हैं।'

मुक्तिबोध की कविताएँ सामान्यत: बहुत लंबी होती है। उन्होंने जो भी अपेक्षाकृत छोटे आकार की कविताएँ लिखी हैं, उनमें से एक है **सहर्ष स्वीकारा है** जो **भूरी-भूरी खाक धूल** में संकलित है। एक होता है-'स्वीकारना' और दूसरा होता है- 'सहर्ष स्वीकारना' यानी खुशी-खुशी स्वीकार करना। यह कविता जीवन के सब दुख-सुख, संघर्ष-अवसाद, उठा-पटक सम्यक भाव से अंगीकार करने की प्रेरणा देती है। कवि को जहाँ से यह प्रेरणा मिली–प्रेरणा के उस उत्स तक भी हमको ले जाती है। उस विशिष्ट व्यक्ति या सत्ता के इसी 'सहजता' के चलते उसको स्वीकार किया था–कुछ इस तरह स्वीकार (और आत्मसात) किया था कि आज तक वह सामने नहीं भी है तो भी आसपास उसके होने का एहसास है–

मुस्काता चाँद ज्यों धरती पर रात-भर
मुझ पर त्यों तुम्हारा ही खिलता वह चेहरा है!

चूँकि यह एहसास आप्लावनकारी है और कविता का 'मैं' उसकी भावप्रवणता के निजी पक्ष से उबरकर सिर्फ़ विचार की तरह उसे जीना चाहता है क्योंकि वह बृहत्तर विश्व की गुत्थियाँ सुलझाने में उसकी मदद करेगी। वह दिवंगता माँ, पत्नी, बहन, सहचरी कोई भी हो सकती है। सहज स्नेह की ऊष्मा जब विरह में अग्निशिखा-सी उद्दीप्त हो उठी है, थोड़ी-थोड़ी-सी निस्संगता भी एकदम से ज़रूरी हो आई है और वह चाहने लगा है मोह-मुक्ति। चाहने लगा है कि भूलने की प्रक्रिया एक अमावस की तरह उसके भीतर इस तरह घटित हो कि चाँद ज़रा-सा ओट हो ले। अँधेरे से सामना हो तो चित्त की ताकत बढ़े। लगातार यह भौतिक और मानसिक अवलंब अंदर एक अज्ञात भय भी कायम करता है।

ममता के बादल की मँडराती कोमलता–क्योंकि भीतर पिराती है
बहलाती-सहलाती आत्मीयता बरदाश्त नहीं होती है।

दृढ़ता और तद्‌जन्य कठोरता भी बड़े मानव-मूल्य हैं, इसलिए भूल जाना भी एक कला है। अति किसी चीज़ की अच्छी नहीं। हर समय की भावार्द्रता भी कमज़ोर करती है। अतिशय प्रकाश से आँखें चौंधिया जाती हैं। इसलिए किसी हद तक वरेण्य है अँधेरा भी-विस्मृति का अँधेरा। आदमी हरदम सब कुछ याद करता चले, तो जीना ही मुश्किल हो जाए। 'तमसो मा

© NCERT not to be republished

ज्योतिर्गमय' यदि एक प्रकार का सच है तो उतना ही बड़ा सच है 'पाताली अँधेरे की गुफ़ाओं' में डूबना। भूलना 'दंड' सही, फिर भी पुरस्कार मानकर ही ग्रहण करना चाहिए।

धुएँ के बादल भी पूर्ण विस्मृति घटित नहीं कर पाते। यादों का धुँधलका वहाँ भी है। मनुष्य की संपूर्ण चेतना अँधेरा-उजाला, सुख-दुख, स्मृति-विस्मृति के ताना-भरनी से बुनी एक कबीरी चादर है जिसे आत्मा चारों ओर से यानी संपूर्णता में लपेट लेना चाहती है। जीवन का निष्कर्ष यही है कि वह किसी का नहीं क्योंकि सब 'उसकी' परछाईं है।

प्रश्न यहाँ यह उठता है कि 'वह' है कौन? दिवंगता माँ या प्रिया? बृहत्तर जीवन-दर्शन—जो ईश्वर-निरपेक्ष होता हुआ भी उतना ही सर्वव्यापी और आप्लावनकारी है जितना कबीर के राम या वड्र्सवर्थ की मातृमना प्रकृति? यह गुत्थी न भी सुलझे तो भी कविता अपनी मर्मस्पर्शिता और द्वंद्वविह्वलता के कारण उतनी ही संगत और विशिष्ट है। साधक और साध्य की एकात्मता, 'तेरा तुझको सौंपता का लागै है मोर' वाला ऐसा निरहंकार विनय पारंपरिक साहित्य से इतर यानी आधुनिक कविता में कम ही दिखाई देता है।

© NCERT not to be republished

सहर्ष स्वीकारा है

ज़िंदगी में जो कुछ है, जो भी है
सहर्ष स्वीकारा है;
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
वह तुम्हें प्यारा है।
गरबीली गरीबी यह, ये गंभीर अनुभव सब
यह विचार-वैभव सब
दृढ़ता यह, भीतर की सरिता यह अभिनव सब
मौलिक है, मौलिक है
इसलिए कि पल-पल में
जो कुछ भी जाग्रत है अपलक है–
संवेदन तुम्हारा है! !

जाने क्या रिश्ता है, जाने क्या नाता है
जितना भी उँड़ेलता हूँ, भर-भर फिर आता है
दिल में क्या झरना है?
मीठे पानी का सोता है
भीतर वह, ऊपर तुम
मुसकाता चाँद ज्यों धरती पर रात-भर
मुझ पर त्यों तुम्हारा ही खिलता वह चेहरा है!

सचमुच मुझे दंड दो कि भूलूँ मैं भूलूँ मैं
तुम्हें भूल जाने की
दक्षिण ध्रुवी अंधकार-अमावस्या
शरीर पर, चेहरे पर, अंतर में पा लूँ मैं
झेलूँ मैं, उसी में नहा लूँ मैं

© NCERT not to be republished

इसलिए कि तुमसे ही परिवेष्टित आच्छादित
रहने का रमणीय यह उजेला अब
सहा नहीं जाता है।
नहीं सहा जाता है।
ममता के बादल की मँडराती कोमलता–
भीतर पिराती है
कमज़ोर और अक्षम अब हो गई है आत्मा यह
छटपटाती छाती को भवितव्यता डराती है
बहलाती सहलाती आत्मीयता बरदाश्त नहीं होती है!!

© NCERT not to be republished

सचमुच मुझे दंड दो कि हो जाऊँ
पाताली अँधेरे की गुहाओं में विवरों में
धुएँ के बादलों में
बिलकुल मैं लापता
लापता कि वहाँ भी तो तुम्हारा ही सहारा है!!
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
या मेरा जो होता-सा लगता है, होता-सा संभव है
सभी वह तुम्हारे ही कारण के कार्यों का घेरा है, कार्यों का वैभव है
अब तक तो ज़िंदगी में जो कुछ था, जो कुछ है
सहर्ष स्वीकारा है
इसलिए कि जो कुछ भी मेरा है
वह तुम्हें प्यारा है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

कविता के साथ

1. टिप्पणी कीजिए; ***गरबीली गरीबी, भीतर की सरिता, बहलाती सहलाती आत्मीयता, ममता के बादल*** ।
2. इस कविता में और भी टिप्पणी-योग्य पद-प्रयोग हैं। ऐसे किसी एक प्रयोग का अपनी ओर से उल्लेख कर उस पर टिप्पणी करें।
3. व्याख्या कीजिए :

जाने क्या रिश्ता है, जाने क्या नाता है
जितना भी उँड़ेलता हूँ, भर-भर फिर आता है
दिल में क्या झरना है?
मीठे पानी का सोता है
भीतर वह, ऊपर तुम
मुसकाता चाँद ज्यों धरती पर रात-भर
मुझ पर त्यों तुम्हारा ही खिलता वह चेहरा है!

उपर्युक्त पंक्तियों की व्याख्या करते हुए यह बताइए कि यहाँ चाँद की तरह आत्मा पर झुका चेहरा भूलकर अंधकार-अमावस्या में नहाने की बात क्यों की गई है?

4. ***तुम्हें भूल जाने की***
दक्षिण ध्रुवी अंधकार-अमावस्या
शरीर पर, चेहरे पर, अंतर में पा लूँ मैं
झेलूँ मैं, उसी में नहा लूँ मैं
इसलिए कि तुमसे ही परिवेष्टित आच्छादित
रहने का रमणीय यह उजेला अब
सहा नहीं जाता है।

(क) यहाँ अंधकार-अमावस्या के लिए क्या विशेषण इस्तेमाल किया गया है और उससे विशेष्य में क्या अर्थ जुड़ता है?

(ख) कवि ने व्यक्तिगत संदर्भ में किस स्थिति को अमावस्या कहा है?

(ग) इस स्थिति से ठीक विपरीत ठहरने वाली कौन-सी स्थिति कविता में व्यक्त हुई है? इस वैपरीत्य को व्यक्त करने वाले शब्द का व्याख्यापूर्वक उल्लेख करें।

(घ) कवि अपने संबोध्य (जिसको कविता संबोधित है कविता का 'तुम') को पूरी तरह भूल जाना चाहता है, इस बात को प्रभावी तरीके से व्यक्त करने के लिए क्या युक्ति अपनाई है? रेखांकित अंशों को ध्यान में रखकर उत्तर दें।

5. ***बहलाती सहलाती आत्मीयता बरदाश्त नहीं होती है***– और कविता के शीर्षक ***सहर्ष स्वीकारा है*** में आप कैसे अंतर्विरोध पाते हैं। चर्चा कीजिए।

© NCERT not to be republished

कविता के आसपास

1. अतिशय मोह भी क्या त्रास का कारक है? माँ का दूध छूटने का कष्ट जैसे एक ज़रूरी कष्ट है, वैसे ही कुछ और ज़रूरी कष्टों की सूची बनाएँ।
3. 'प्रेरणा' शब्द पर सोचिए और उसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए जीवन के वे प्रसंग याद कीजिए जब माता-पिता, दीदी-भैया, शिक्षक या कोई महापुरुष/महानारी आपके अँधेरे क्षणों में प्रकाश भर गए।
4. 'भय' शब्द पर सोचिए। सोचिए कि मन में किन-किन चीज़ों का भय बैठा है? उससे निबटने के लिए आप क्या करते हैं और कवि की मन:स्थिति से अपनी मन:स्थिति की तुलना कीजिए।

शब्द-छवि

परिवेष्टित - चारों ओर से घिरा हुआ
पिराना - दर्द करना
गुहाओं - गुफाओं
विवर - बिल

12070CH06

शमशेर बहादुर सिंह 6

जन्म : *13 जनवरी, सन् 1911 को देहरादून (उत्तर प्रदेश अब उत्तराखंड में)*

प्रकाशित रचनाएँ : *कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ, चुका भी हूँ नहीं मैं, इतने पास अपने, बात बोलेगी, काल तुझसे होड़ है मेरी, 'उर्दू-हिंदी कोश' का संपादन*

सम्मान : *'साहित्य अकादेमी' तथा 'कबीर सम्मान' सहित अनेक पुरस्कारों से सम्मानित*

निधन : *सन् 1993, अहमदाबाद में*

© NCERT not to be republished

तुमने 'धरती' का पद्य पढ़ा है? उसकी सहजता प्राण है।

खुद को उर्दू और हिंदी का दोआब मानने वाले शमशेर की कविता एक संधिस्थल पर खड़ी है। यह संधि एक ओर साहित्य, चित्रकला और संगीत की है तो दूसरी ओर मूर्तता और अमूर्तता की तथा ऐंद्रिय और ऐंद्रियेतर की है।

विचारों के स्तर पर प्रगतिशील और शिल्प के स्तर पर प्रयोगधर्मी कवि शमशेर की पहचान एक बिंबधर्मी कवि के रूप में है। उनकी यह बिंबधर्मिता शब्दों से रंग, रेखा, स्वर और कूची की अद्‌भुत कशीदाकारी का माद्दा रखती है। उनका चित्रकार मन कलाओं के बीच की दूरी को न केवल पाटता है, बल्कि भाषातीत हो जाना चाहता है। उनकी मूल चिंता माध्यम का उपयोग करते हुए भी बंधन से परे जाने की है।

ओ माध्यम! क्षमा करना
कि मैं तुम्हारे पार जाना चाहता हूँ।

कथा और शिल्प दोनों ही स्तरों पर उनकी कविता का मिज़ाज अलग है। उर्दू शायरी के प्रभाव से संज्ञा और विशेषण से अधिक बल सर्वनामों, क्रियाओं, अव्ययों और मुहावरों को दिया है। उन्होंने खुद भी कुछ अच्छे शेर कहे हैं।

शमशेर बहादुर सिंह

सचेत इंद्रियों का यह कवि जब प्रेम, पीड़ा, संघर्ष और सृजन को गूँथकर कविता का महल बनाता है तो वह ठोस तो होता ही है अनुगूँजों से भी भरा होता है। वह पाठक को न केवल पढ़े जाने के लिए आमंत्रित करती है, बल्कि सुनने और देखने को भी।

प्रयोगवादी (1943 से प्रारंभ) कविता शिल्प संबंधी बहुत से प्रयोग लेकर आई। नए बिंब, नए प्रतीक, नए उपमान कविता के उपकरण बने। यहाँ तक कि पुराने उपमानों में भी नए अर्थ की चमक भरने का प्रयास प्रयोक्ता कवियों ने किया। अपना आस-पड़ोस कविता का हिस्सा बना। प्रकृति में होने वाला परिवर्तन मानवीय जीवन-चित्र बनकर अभिव्यक्त हुआ। प्रस्तुत कविता ***उषा*** *सूर्योदय के ठीक पहले के पल-पल परिवर्तित प्रकृति का शब्द-चित्र है। शमशेर ऐसे बिंबधर्मी कवि हैं, जिन्होंने प्रकृति की गति को शब्दों में बाँधने का अद्‌भुत प्रयास किया है। यह कविता भी इसका उदाहरण प्रस्तुत करती है। कवि भोर के आसमान का मूकद्रष्टा नहीं है। वह भोर की आसमानी गति को धरती के जीवन भरे हलचल से जोड़ने वाला स्रष्टा भी है। इसीलिए वह सूर्योदय के साथ एक जीवंत परिवेश की कल्पना करता है जो गाँव की सुबह से जुड़ता है– वहाँ सिल है, राख से लीपा हुआ चौका है और है स्लेट की कालिमा पर चाक से रंग मलते अदृश्य बच्चों के नन्हे हाथ। यह एक ऐसे दिन की शुरुआत है, जहाँ रंग है, गति है और भविष्य की उजास है और है हर कालिमा को चीरकर आने का एहसास कराती उषा।*

© NCERT not to be republished

उषा

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका
(अभी गीला पड़ा है)

बहुत काली सिल ज़रा से लाल केसर से
कि जैसे धुल गई हो

स्लेट पर या लाल खड़िया चाक
मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की
गौर झिलमिल देह
जैसे हिल रही हो।

और...

जादू टूटता है इस उषा का अब
सूर्योदय हो रहा है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

कविता के साथ

1. कविता के किन उपमानों को देखकर यह कहा जा सकता है कि उषा कविता गाँव की सुबह का गतिशील शब्दचित्र है?
2. ***भोर का नभ***

   राख से लीपा हुआ चौका
   (अभी गीला पड़ा है)

   नयी कविता में कोष्ठक, विराम चिह्नों और पंक्तियों के बीच का स्थान भी कविता को अर्थ देता है। उपर्युक्त पंक्तियों में कोष्ठक से कविता में क्या विशेष अर्थ पैदा हुआ है? समझाइए।

अपनी रचना

* अपने परिवेश के उपमानों का प्रयोग करते हुए सूर्योदय और सूर्यास्त का शब्दचित्र खींचिए।

आपसदारी

* सूर्योदय का वर्णन लगभग सभी बड़े कवियों ने किया है। प्रसाद की कविता 'बीती विभावरी जाग री' और अज्ञेय की 'बावरा अहेरी' की पंक्तियाँ आगे बॉक्स में दी जा रही हैं। 'उषा' कविता के समानांतर इन कविताओं को पढ़ते हुए नीचे दिए गए बिंदुओं पर तीनों कविताओं का विश्लेषण कीजिए और यह भी बताइए कि कौन-सी कविता आपको ज़्यादा अच्छी लगी और क्यों?

● उपमान ● शब्दचयन ● परिवेश

© NCERT not to be republished

बीती विभावरी जाग री!
अंबर पनघट में डुबो रही–
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लाई–
मधु मुकुल नवल रस गागरी।
अधरों में राग अमंद पिए,
अलकों में मलयज बंद किए–
तू अब तक सोई है आली
आँखों में भरे विहाग री।

– जयशंकर प्रसाद

भोर का बावरा अहेरी
पहले बिछाता है आलोक की
लाल-लाल कनियाँ
पर जब खींचता है जाल को
बाँध लेता है सभी को साथ:
छोटी-छोटी चिड़ियाँ, मँझोले परेवे, बड़े-बड़े पंखी
डैनों वाले डील वाले डौल के बेडौल
उड़ने जहाज़,
कलस-तिसूल वाले मंदिर-शिखर से ले
तारघर की नाटी मोटी चिपटी गोल धुस्सों वाली उपयोग-सुंदरी
बेपनाह काया को:
गोधूली की धूल को, मोटरों के धुएँ को भी
पार्क के किनारे पुष्पिताग्र कर्णिकार की आलोक-खची तन्वि रूप-रेखा को
और दूर कचरा जलानेवाली कल की उद्दंड चिमनियों को, जो
धुआँ यों उगलती हैं मानो उसी मात्र से अहेरी को हरा देंगी।

– सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

© NCERT
not to be republished

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' 7

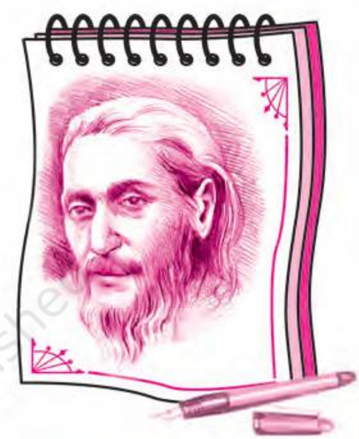

जन्म : सन् 1899, महिषादल, (बंगाल के मेदिनीपुर ज़िले में) पारिवारिक गाँव-गढ़ाकोला, (उन्नाव, उत्तर प्रदेश)
***प्रमुख रचनाएँ :** अनामिका, परिमल, गीतिका, बेला, नए पत्ते, अणिमा, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता (कविता संग्रह); चतुरी चमार, प्रभावती, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, काले कारनामे (गद्य); आठ खंडों में 'निराला रचनावली' प्रकाशित। समन्वय, मतवाला पत्रिका का संपादन*
***निधन :** सन् 1961, (इलाहाबाद में)*

नव गति नव लय ताल छंद नव / नवल कंठ नव जलद मंद रव /
नव नभ के नव विहग वृंद को / नव पर नव स्वर दे।

कविता को नया स्वर देने वाले निराला छायावाद के ऐसे कवि हैं जो एक ओर कबीर की परंपरा से जुड़ते हैं तो दूसरी ओर समकालीन कवियों के प्रेरणा स्रोत भी हैं। उनका यह विस्तृत काव्य-संसार अपने भीतर संघर्ष और जीवन, क्रांति और निर्माण, ओज और माधुर्य, आशा और निराशा के द्वंद्व को कुछ इस तरह समेटे हुए है कि वह किसी सीमा में बँध नहीं पाता। उनका यह निर्बंध और उदात्त काव्य-व्यक्तित्व कविता और जीवन में फाँक नहीं रखता। वे आपस में घुले-मिले हैं। उल्लास-शोक, राग-विराग, उत्थान-पतन, अंधकार-प्रकाश का सजीव कोलाज है उनकी कविता। जब वे मुक्त छंद की बात करते हैं तो केवल छंद, रूढ़ियों आदि के बंधन को ही नहीं तोड़ते बल्कि काव्य विषय और युग की सीमाओं को भी अतिक्रमित करते हैं।

विषयों और भावों की तरह भाषा की दृष्टि से भी निराला की कविता के कई रंग हैं। एक तरफ़ तत्सम सामासिक पदावली और ध्वन्यात्मक बिंबों से युक्त **राम की शक्ति पूजा** और कठिन छंद-साधना का प्रतिमान **तुलसीदास** है, तो दूसरी तरफ़ देशी टटके शब्दों का सोंधापन लिए **कुकुरमुत्ता, रानी और कानी, महँगू महँगा रहा** जैसी कविताएँ हैं।

धिक् जीवन जो / पाता ही आया विरोध, कहने वाले निराला उत्कट आत्मशक्ति और अद्‌भुत जिजीविषा के कवि हैं, जो हार नहीं मानते और निराशा के क्षणों में शक्ति की मौलिक कल्पना कर शक्ति का साधन जुटाते हैं।

इसीलिए इस शक्तिसाध्य कवि निराला को वर्षा ऋतु अधिक आकृष्ट करती है; क्योंकि बादल के भीतर सृजन और ध्वंस की ताकत एक साथ समाहित है। बादल उन्हें प्रिय है क्योंकि स्वयं उनका व्यक्तित्व बादल के स्वभाव के करीब है। बादल किसान के लिए उल्लास एवं निर्माण का तो मज़दूर के संदर्भ में क्रांति एवं बदलाव का अग्रदूत है।

***बादल राग** कविता **अनामिका** में छह खंडों में प्रकाशित है। यहाँ उसका छठा खंड लिया गया है। **लघुमानव (आम आदमी)** के दुख से त्रस्त कवि यहाँ बादल का आह्वान क्रांति के रूप में कर रहा है क्योंकि **विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।** किसान मज़दूर की आकांक्षाएँ बादल को नव-निर्माण के राग के रूप पुकार रही हैं।*

*क्रांति हमेशा वंचितों का प्रतिनिधित्व करती है– इस अर्थ में भी छोटे को देखा जा सकता है। **अट्टालिका नहीं है रे** में भी वंचितों की पक्षधरता की अनुगूँज स्पष्ट है।*

*बादलों के अंग-अंग में बिजलियाँ सोई हैं, वज्रपात से उनके शरीर आहत भी हों तो भी हिम्मत नहीं हारते, बार-बार गिरकर उठते हैं। **गगन स्पर्शी, स्पर्द्धा-धीर** ये बादल दरअसल वीरों का एक प्रमत्त दल दिखाई देते हैं। चूँकि ये विप्लव के बादल हैं, इसलिए गर्जन-तर्जन अमोघ हैं।*

*गरमी से तपी-झुलसी धरती पर क्रांति के संदेश की तरह बादल आए हैं। हर तरफ़ सब कुछ रूखा-सूखा और मुरझाया-सा है। अकाल की चिंता से व्याकुल किसान 'हाड़-मात्र' ही रह गए हैं– **जीर्ण शरीर, त्रस्त नयनमुख** । पूरी धरती का हृदय दग्ध है–ऐसे में बादल का प्रकट होना, प्रकृति में और जगत में, कैसे परिवर्तन घटित कर रहा है–कविता इन बिंबों के माध्यम से इसका अत्यंत सजल और व्यंजक संकेत करती है।*

धरती के भीतर सोए अंकुर नवजीवन की आशा में सिर ऊँचा करके बादल की उपस्थिति दर्ज कर रहे हैं। क्रांति जो हरियाली लाएगी, उसके सबसे उत्फुल्ल धारक नए पौधे, छोटे बच्चे ही होंगे।

***समीर-सागर** के विराट बिंब से निराला की कविता शुरू होती है। यह इकलौता बिंब इतना विराट और व्यंजक है कि निराला का पूरा काव्य-व्यक्तित्व इसमें उमड़ता-घुमड़ता दिखाई देता है। इस तरह यह कविता लघुमानव की खुशहाली का राग बन गई है। इसीलिए **बादल राग** एक ओर जीवन निर्माण के नए राग का सूचक है तो दूसरी ओर उस भैरव संगीत का, जो नव निर्माण का कारण बनता है।*

© NCERT not to be republished

बादल राग

तिरती है समीर-सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया–
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया–
यह तेरी रण-तरी
भरी आकांक्षाओं से,
घन, भेरी-गर्जन से सजग सुप्त अंकुर
उर में पृथ्वी के, आशाओं से
नवजीवन की, ऊँचा कर सिर,
ताक रहे हैं, ऐ विप्लव के बादल!
फिर-फिर
बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार,
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार।
अशनि-पात से शापित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर,
गगन-स्पर्शी स्पर्द्धा धीर।
हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार–
शस्य अपार,
हिल-हिल
खिल-खिल,
हाथ हिलाते,
तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।

© NCERT not to be republished

अट्टालिका नहीं है रे
आतंक-भवन
सदा पंक पर ही होता
जल-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से
सदा छलकता नीर,
रोग-शोक में भी हँसता है
शैशव का सुकुमार शरीर।
रुद्ध कोष है, क्षुब्ध तोष

अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं।
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त–नयन मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार!

© NCERT not to be republished

अभ्यास

कविता के साथ

1. ***अस्थिर सुख पर दुख की छाया*** पंक्ति में ***दुख की छाया*** किसे कहा गया है और क्यों?
2. ***अशनि-पात से शापित उन्नत शत-शत वीर*** पंक्ति में किसकी ओर संकेत किया गया है?
3. ***विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते*** पंक्ति में ***विप्लव-रव*** से क्या तात्पर्य है? ***छोटे ही हैं शोभा पाते*** ऐसा क्यों कहा गया है?
4. बादलों के आगमन से प्रकृति में होने वाले किन-किन परिवर्तनों को कविता रेखांकित करती है?

व्याख्या कीजिए

1. तिरती है समीर-सागर पर
   अस्थिर सुख पर दुख की छाया–
   जग के दग्ध हृदय पर
   निर्दय विप्लव की प्लावित माया–
2. अट्टालिका नहीं है रे
   आतंक-भवन
   सदा पंक पर ही होता
   जल-विप्लव-प्लावन

कला की बात

1. पूरी कविता में प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। आपको प्रकृति का कौन-सा मानवीय रूप पसंद आया और क्यों?
2. कविता में रूपक अलंकार का प्रयोग कहाँ-कहाँ हुआ है? संबंधित वाक्यांश को छाँटकर लिखिए।
3. इस कविता में बादल के लिए ***ऐ विप्लव के वीर!, ऐ जीवन के पारावार!*** जैसे संबोधनों का इस्तेमाल किया गया है। बादल राग कविता के शेष पाँच खंडों में भी कई संबोधनों का इस्तेमाल किया गया है। जैसे– ***अरे वर्ष के हर्ष!, मेरे पागल बादल!, ऐ निर्बंध!, ऐ स्वच्छंद!, ऐ उद्दाम!, ऐ सम्राट!, ऐ विप्लव के प्लावन!, ऐ अनंत के चंचल शिशु सुकुमार!*** उपर्युक्त संबोधनों की व्याख्या करें तथा बताएँ कि बादल के लिए इन संबोधनों का क्या औचित्य है?
4. कवि बादलों को किस रूप में देखता है? कालिदास ने **मेघदूत** काव्य में मेघों को दूत के रूप में देखा। आप अपना कोई काल्पनिक बिंब दीजिए।
5. कविता को प्रभावी बनाने के लिए कवि विशेषणों का सायास प्रयोग करता है जैसे- ***अस्थिर सुख***। ***सुख*** के साथ ***अस्थिर*** विशेषण के प्रयोग ने सुख के अर्थ में विशेष प्रभाव पैदा कर दिया है। ऐसे अन्य विशेषणों को कविता से छाँटकर लिखें तथा बताएँ कि ऐसे शब्द-पदों के प्रयोग से कविता के अर्थ में क्या विशेष प्रभाव पैदा हुआ है?

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

रुद्ध – रुका हुआ
क्षुब्ध – अशांत, क्रुद्ध
अंक – हृदय
शीर्ण – क्षीण
कृषक – किसान
विप्लव – क्रांति, बाढ़
दग्ध – तप्त, तपा हुआ
रण-तरी – युद्ध की नौका
प्लावित – बहा दिया गया
भेरी – बड़ा ढोल
सुप्त – सोया हुआ
अशनि-पात – वज्रपात
क्षत-विक्षत – लहूलुहान, बुरी तरह से घायल
हत – घायल, मारा हुआ
शस्य – हरा

12070CH08

गोस्वामी तुलसीदास 8

जन्म : *सन् 1532, बाँदा (उत्तर प्रदेश) ज़िले के राजापुर गाँव में माना जाता है*

प्रमुख रचनाएँ : *रामचरितमानस, विनयपत्रिका, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, दोहावली, कवितावली, रामाज्ञा-प्रश्न*

निधन : *सन् 1623, काशी में*

हृदय-सिंधु मति सीप समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना।।
जौं बरषै बर बारि विचारू। होहिं कबित मुकुतामनी चारू।।
कीरति भनिति भूति भल सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।

भक्तिकाल की सगुण काव्य-धारा में रामभक्ति शाखा के सर्वोपरि कवि गोस्वामी तुलसीदास में भक्ति से कविता बनाने की प्रक्रिया की सहज परिणति है। परंतु उनकी भक्ति इस हद तक लोकोन्मुख है कि वे लोकमंगल की साधना के कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। यह बात न सिर्फ़ उनकी काव्य-संवेदना की दृष्टि से, वरन् काव्यभाषा के घटकों की दृष्टि से भी सत्य है। इसका सबसे प्रकट प्रमाण तो यही है कि शास्त्रीय भाषा (संस्कृत) में सर्जन-क्षमता होने के बावजूद उन्होंने लोकभाषा (अवधी व ब्रजभाषा) को साहित्य-रचना के माध्यम के रूप में चुना और बुना। जिस प्रकार उनमें भक्त और रचनाकार का द्वंद्व है, उसी प्रकार शास्त्र व लोक का द्वंद्व है; जिसमें संवेदना की दृष्टि से लोक की ओर वे झुके हैं तो शिल्पगत मर्यादा की दृष्टि से शास्त्र की ओर। शास्त्रीयता को लोकग्राह्य तथा लोकगृहीत को शास्त्रीय बनाने की उभयमुखी प्रक्रिया उनके यहाँ चलती है। यह तत्त्व उन्हें विद्वानों तथा जनसामान्य में समान रूप से लोकप्रिय बनाता है। उनकी एक अनन्य विशेषता है कि वे दार्शनिक और लौकिक स्तर के नाना द्वंद्वों के चित्रण और उनके समन्वय के कवि हैं। 'द्वंद्व-चित्रण' जहाँ सभी विचार/भावधारा के लोगों को तुलसी-काव्य में अपनी-अपनी उपस्थिति का संतोष देता है, वहीं 'समन्वय' उनकी ऊपरी विभिन्नता में निहित एक ही मानवीय सूत्र को उपलब्ध करा के संसार में एकता व शांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

© NCERT not to be republished

तुलसीदास की लोक व शास्त्र दोनों में गहरी पैठ है तथा जीवन व जगत की व्यापक अनुभूति और मार्मिक प्रसंगों की उन्हें अचूक समझ है। यह विशेषता उन्हें महाकवि बनाती है और इसी से प्रकृति व जीवन के विविध भावपूर्ण चित्रों से उनका रचना संसार समृद्ध है, विशेषकर 'रामचरितमानस'। इसी से यह हिंदी का अद्वितीय महाकाव्य बनकर उभरा है। इसकी विश्वप्रसिद्ध लोकप्रियता के पीछे सीताराम कथा से अधिक लोक-संवेदना और समाज की नैतिक बनावट की समझ है। उनके सीता-राम ईश्वर की अपेक्षा तुलसी के देश काल के आदर्शों के अनुरूप मानवीय धरातल पर पुनः सृष्ट चरित्र हैं। गोस्वामी जी ग्रामीण व कृषक संस्कृति तथा रक्त संबंध की मर्यादा पर आदर्शीकृत गृहस्थ जीवन के चितेरे कवि हैं।

तुलसीदास इस अर्थ में हिंदी के जातीय कवि हैं कि अपने समय में हिंदी-क्षेत्र में प्रचलित सारे भावात्मक व काव्यभाषायी तत्त्वों का प्रतिनिधित्व वे करते हैं। इस संदर्भ में भाव, विचार, काव्य-रूप, छंद और काव्यभाषा की जो बहुल समृद्धि उनमें दिखती है—वह अद्वितीय है। तत्कालीन हिंदी-क्षेत्र की दोनों काव्य भाषाओं—अवधी व ब्रजभाषा तथा दोनों संस्कृति कथाओं—सीताराम व राधाकृष्ण की कथाओं को साधिकार अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं। उपमा अलंकार के क्षेत्र में जो प्रयोग-वैशिष्ट्य कालिदास की पहचान है, वही पहचान सांगरूपक के क्षेत्र में तुलसीदास की है।

© NCERT not to be republished

विविध विषमताओं से ग्रस्त कलिकाल तुलसी का युगीन यथार्थ है, जिसमें वे कृपालु प्रभु राम व रामराज्य का स्वप्न रचते हैं। युग और उसमें अपने जीवन का न सिर्फ़ उन्हें गहरा बोध है, बल्कि उसकी अभिव्यक्ति में भी वे अपने समकालीन कवियों से आगे हैं। यहाँ पाठ में प्रस्तुत 'कवितावली' के दो ***कवित्त*** *और एक* ***सवैया*** *इसके प्रमाणस्वरूप हैं। पहले छंद ("किसबी किसान...")में उन्होंने दिखलाया है कि संसार के अच्छे-बुरे समस्त लीला-प्रपंचों का आधार 'पेट की आग' का दारुण व गहन यथार्थ है; जिसका समाधान वे राम-रूपी घनश्याम (मेघ) के कृपा-जल में देखते हैं। इस प्रकार, उनकी राम-भक्ति पेट की आग बुझाने वाली यानी जीवन के यथार्थ संकटों का समाधान करने वाली है; साथ ही जीवन-बाह्य आध्यात्मिक मुक्ति देने वाली भी। दूसरे छंद ("खेती न किसान...") में प्रकृति और शासन की विषमता से उपजी बेकारी व गरीबी की पीड़ा का यथार्थपरक चित्रण करते हुए उसे दशानन (रावण) से उपमित करते हैं। तीसरे छंद ("धूत कहौ...") में भक्ति की गहनता और सघनता में उपजे भक्त-हृदय के आत्मविश्वास का सजीव चित्रण है, जिससे समाज में व्याप्त जात-पाँत और धर्म के विभेदक दुराग्रहों के तिरस्कार का साहस पैदा होता है। इस प्रकार भक्ति की रचनात्मक भूमिका का संकेत यहाँ है, जो आज के भेदभावमूलक सामाजिक-राजनीतिक माहौल में अधिक प्रासंगिक है।*

'रामचरितमानस' के ***लंका कांड*** *से गृहीत लक्ष्मण के शक्ति बाण लगने का प्रसंग कवि की मार्मिक स्थलों की पहचान का एक श्रेष्ठ नमूना है। भाई के शोक में विगलित राम का विलाप धीरे-धीरे प्रलाप में बदल जाता है, जिसमें लक्ष्मण के प्रति राम के अंतर में छिपे प्रेम के कई कोण सहसा अनावृत हो जाते हैं। यह प्रसंग ईश्वरीय राम का पूरी तरह से मानवीकरण कर देता है, जिससे पाठक*

का काव्य-मर्म से सीधे जुड़ाव हो जाता है और वह भक्त तुलसी के भीतर से कवि तुलसी के उभर आने और पूरे प्रसंग पर उसके छा जाने की अनुभूति करता है। इस घने शोक-परिवेश में हनुमान का संजीवनी लेकर आ जाना कवि को करुण रस के बीच वीर रस के उदय के रूप में दिखता है। यह उपमा अद्‌भुत है और काव्यगत करुण-प्रसंग को जीवन के मंगल-विकास की ओर ले जाती है।

© NCERT
not to be republished

कवितावली (उत्तर कांड से)

किसबी, किसान-कुल, बनिक, भिखारी, भाट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार , चेटकी।
पेटको पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-गन अहन अखेटकी।।
ऊँचे-नीचे करम, धरम-अधरम करि,
पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।
'तुलसी' बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागितें बड़ी है आगि पेटकी।।

© NCERT not to be republished

खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका बिहीन लोग सीद्यमान सोच बस,
कहैं एक एकन सों 'कहाँ जाई, का करी?'
बेदहूँ पुरान कही, लोकहूँ बिलोकिअत,
साँकरे सबैं पै, राम! रावरें कृपा करी।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु!
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी।।

धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ।
काहू की बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ।।
तुलसी सरनाम गुलामु है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबोको एकु न दैबको दोऊ।

लक्ष्मण-मूर्च्छा और राम का विलाप

दोहा

तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहउँ नाथ तुरंत।
अस कहि आयसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत।।
भरत बाहु बल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवनकुमार।।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी।।
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायऊ।।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।।

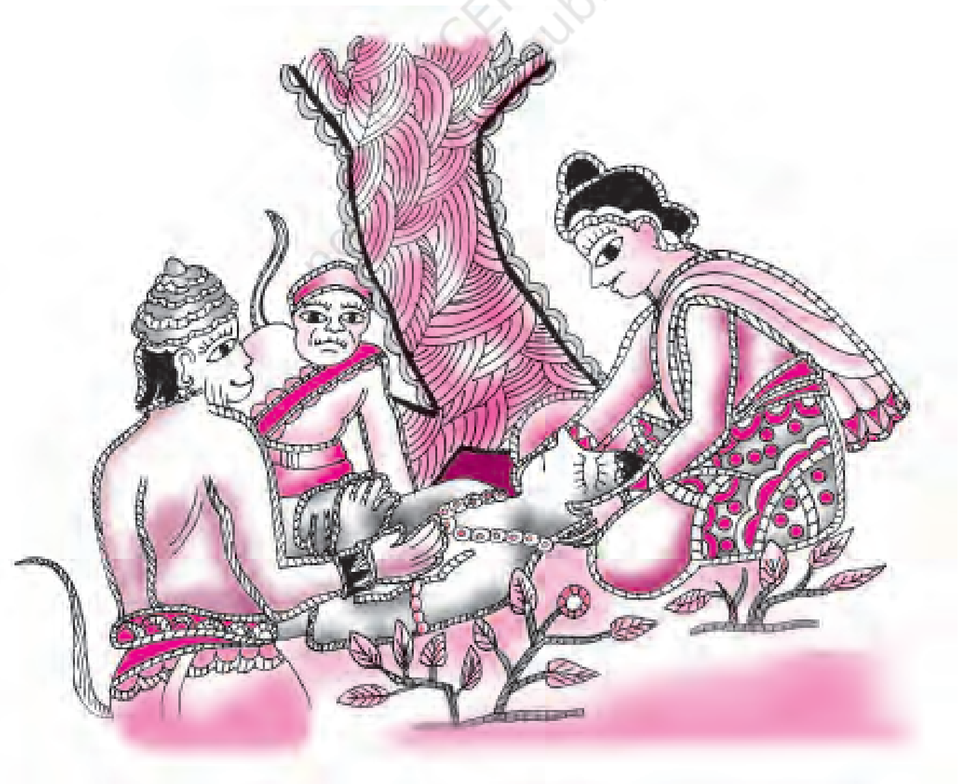

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पितु बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
सुत बित नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा।।
अस बिचारि जियँ जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।।
जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही।।
जैहउँ अवध कवन मुहुँ लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं।।
अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा।।
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।।
उतरु काह दैहउँ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।।
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन।।
उमा एक अखंड रघुराई। नर गति भगत कृपाल देखाई।।

सोरठा

प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना मँह बीर रस।।

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना।।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमन हरषाई।।
हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता।।
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहिं ताहि लइ आवा।।
यह बृतांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।।
ब्याकुल कुंभकरन पहिं आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा।।
जागा निसिचर देखिअ कैसा। मानहुँ कालु देह धरि बैसा।।
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई।।
कथा कही सब तेहिं अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी।।
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संघारे।।
दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकंपन भारी।।
अपर महोदर आदिक बीरा । परे समर महि सब रनधीरा।।

दोहा

सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान।।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. कवितावली में उद्धृत छंदों के आधार पर स्पष्ट करें कि तुलसीदास को अपने युग की आर्थिक विषमता की अच्छी समझ है।
2. पेट की आग का शमन ईश्वर (राम) भक्ति का मेघ ही कर सकता है– तुलसी का यह काव्य-सत्य क्या इस समय का भी युग-सत्य है? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
3. तुलसी ने यह कहने की ज़रूरत क्यों समझी?
   धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूतु कहौ, जोलहा कहौ कोऊ / काहू की बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ। इस सवैया में ***काहू के बेटासों बेटी न ब्याहब*** कहते तो सामाजिक अर्थ में क्या परिवर्तन आता?
4. ***धूत कहौ...*** वाले छंद में ऊपर से सरल व निरीह दिखलाई पड़ने वाले तुलसी की भीतरी असलियत एक स्वाभिमानी भक्त हृदय की है। इससे आप कहाँ तक सहमत हैं?
5. व्याख्या करें–
   (क) मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।
   जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पितु बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
   (ख) जथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिबर कर हीना।
   अस मम जिवन बंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जिआवै मोही।।
   (ग) माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो, लैबोको एकु न दैबको दोऊ।।
   (घ) ऊँचे नीचे करम, धरम-अधरम करि, पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी।।
6. भ्रातृशोक में हुई राम की दशा को कवि ने प्रभु की नर लीला की अपेक्षा सच्ची मानवीय अनुभूति के रूप में रचा है। क्या आप इससे सहमत हैं? तर्कपूर्ण उत्तर दीजिए।
7. शोकग्रस्त माहौल में हनुमान के अवतरण को करुण रस के बीच वीर रस का आविर्भाव क्यों कहा गया है?
8. जैहउँ अवध कवन मुहुँ लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
   बरु अपजस सहतेउँ जग माहीं। नारि हानि बिसेष छति नाहीं।।
   भाई के शोक में डूबे राम के इस प्रलाप-वचन में स्त्री के प्रति कैसा सामाजिक दृष्टिकोण संभावित है?

© NCERT not to be republished

पाठ के आसपास

1. कालिदास के ***रघुवंश*** महाकाव्य में पत्नी (इंदुमती) के मृत्यु-शोक पर **अज** तथा निराला की ***सरोज-स्मृति*** में पुत्री (सरोज) के मृत्यु-शोक पर पिता के करुण उद्गार निकले हैं। उनसे भ्रातृशोक में डूबे राम के इस विलाप की तुलना करें।
2. ***पेट ही को पचत, बेचत बेटा-बेटकी*** तुलसी के युग का ही नहीं आज के युग का भी सत्य है। भुखमरी में किसानों की आत्महत्या और संतानों (खासकर बेटियों) को भी बेच डालने की हृदय-विदारक घटनाएँ हमारे देश में घटती रही हैं। वर्तमान परिस्थितियों और तुलसी के युग की तुलना करें।
3. तुलसी के युग की बेकारी के क्या कारण हो सकते हैं? आज की बेकारी की समस्या के कारणों के साथ उसे मिलाकर कक्षा में परिचर्चा करें।
4. राम कौशल्या के पुत्र थे और लक्ष्मण सुमित्रा के। इस प्रकार वे परस्पर सहोदर (एक ही माँ के पेट से जन्मे) नहीं थे। फिर, राम ने उन्हें लक्ष्य कर ऐसा क्यों कहा– "मिलइ न जगत सहोदर भ्राता"? इस पर विचार करें।
5. यहाँ कवि तुलसी के दोहा, चौपाई, सोरठा, कवित्त, सवैया–ये पाँच छंद प्रयुक्त हैं। इसी प्रकार तुलसी साहित्य में और छंद तथा काव्य-रूप आए हैं। ऐसे छंदों व काव्य-रूपों की सूची बनाएँ।

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

कसब (किसबी)	–	धंधा
चेटकी	–	बाज़ीगर
तव	–	तुम्हारा, आपका
राखि	–	रखकर
जैहउँ	–	जाऊँगा
अस	–	इस तरह
आयसु	–	आज्ञा
मुहुँ	–	में
कपि	–	बंदर (यहाँ हनुमान के लिए प्रयुक्त)
सराहत	–	बड़ाई कर रहे हैं
मनुज अनुसारी	–	मानवोचित
काऊ	–	किसी प्रकार
लागि	–	के लिए
तजहु	–	त्यागते हो
बिपिन	–	जंगल
आतप	–	धूप

बाता	–	हवा, तूफ़ान
जनतेउँ	–	(यदि) जानता
मनतेउँ	–	(तो) मानता
बित	–	धन
नारि	–	स्त्री, पत्नी (यहाँ पर पत्नी)
बारहिं बारा	–	बार-बार ही
जियँ	–	मन में
बिचारि	–	विचार कर
सहोदर	–	एक ही माँ की कोख से जन्मे
जथा	–	जैसे
दीना	–	दरिद्र
ताता	–	भाई के लिए संबोधन
मनि	–	नागमणि
फनि	–	साँप(यहाँ मणि-सर्प)
करिवर	–	हाथी
कर	–	सूँड़
मम	–	मेरा
बिनु तोही	–	तुम्हारे बिना
बरु	–	चाहे
अपजस	–	अपयश, कलंक
सहतेउँ	–	सहना पड़ेगा
छति	–	क्षति, हानि
निठुर	–	निष्ठुर, हृदयहीन
तासु	–	उसके
मोहि	–	मुझे
पानी	–	हाथ
उतरु काह दैहउँ	–	क्या उत्तर दूँगा
सोच-बिमोचन	–	शोक दूर करने वाला
स्रवत	–	चूता है
प्रलाप	–	तर्क हीन वचन-प्रवाह
निकर	–	समूह
हरषि	–	प्रसन्न होकर
भेंटेउ	–	भेंट की, मिले
कृतग्य	–	कृतज्ञ
सुजाना	–	अच्छा ज्ञानी, समझदार

© NCERT not to be republished

कीन्हि	–	किया
हरषाई	–	हर्षित
हृदयँ	–	हृदय में
ब्राता	–	समूह, झुंड
लइ आया	–	ले आए
सिर धुनेऊ	–	सिर धुनने लगा
पहिं	–	(के) पास
निसिचर	–	रात में चलने वाला
हरि आनी	–	हरण कर लाए
जोधा	–	योद्धा
संघारे	–	मार डाले
दुर्मुख	–	कड़वी ज़बान वाला
दसकंधर	–	दशानन, रावण
महोदर	–	बड़े पेट वाला
अपर	–	दूसरा
भट	–	योद्धा
सठ	–	दुष्ट
रनधीरा	–	युद्ध में अविचल रहने वाला

© NCERT not to be republished

इन्हें भी जानें

चौपाई

चौपाई सम मात्रिक छंद है। यह चार पंक्तियों का होता है जिसकी प्रत्येक पंक्ति में 16–16 मात्राएँ होती हैं। चालीस चौपाइयों वाली रचना को **चालीसा** कहा जाता है–यह तथ्य लोकप्रसिद्ध है।

दोहा

दोहा अर्धसम मात्रिक छंद है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 11–11 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 13–13 मात्राएँ होती हैं। इनके साथ अंत लघु (।) वर्ण होता है।

सोरठा

दोहे को उलट देने से सोरठा बन जाता है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 13-13 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 11-11 मात्राएँ होती हैं। परंतु दोहे के विपरीत इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में अंत्यानुप्रास या तुक नहीं रहती, विषम चरणों (पहले और तीसरे) में तुक होती है।

कवित्त

यह वार्णिक छंद है। इसे मनहरण भी कहते हैं। कवित्त के प्रत्येक चरण में 31-31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के 16वें और फिर 15वें वर्ण पर यति रहती है। प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है।

सवैया

चूँकि सवैया वार्णिक छंद है, इसलिए सवैया छंद के कई भेद हैं। ये भेद गणों के संयोजन के आधार पर बनते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मत्तगयंद सवैया है इसे मालती सवैया भी कहते हैं। सवैया के प्रत्येक चरण में 22 से 26 वर्ण होते हैं। यहाँ प्रस्तुत तुलसी का सवैया कई भेदों को मिलाकर बनता है।

© NCERT not to be republished

12070CH09

फ़िराक गोरखपुरी 9

***मूल नाम** : रघुपति सहाय 'फ़िराक'*
***जन्म** : 28 अगस्त, सन् 1896, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)*
***शिक्षा** : रामकृष्ण की कहानियों से शुरुआत, बाद की शिक्षा अरबी, फ़ारसी और अंग्रेज़ी में। 1917 में डिप्टी कलेक्टर के पद पर चयनित, पर स्वराज आंदोलन के लिए 1918 में पद-त्याग। 1920 में स्वाधीनता आंदोलन में हिस्सेदारी के कारण डेढ़ वर्ष की जेल। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेज़ी विभाग में अध्यापक रहे।*
सम्मान** : **गुले-नग्मा** के लिए **साहित्य अकादेमी** पुरस्कार, **ज्ञानपीठ पुरस्कार** और **सोवियत लैंड नेहरू अवार्ड
***महत्त्वपूर्ण कृतियाँ** : गुले-नग्मा, बज़्मे ज़िंदगी: रंगे-शायरी, उर्दू गज़लगोई*
***निधन** : सन् 1983*

अब तुमसे रुखसत होता हूँ आओ सँभालो साज़े-गज़ल /
नए तराने छेड़ो / मेरे नग्मों को नींद आती है

उर्दू शायरी का बड़ा हिस्सा रुमानियत, रहस्य और शास्त्रीयता से बँधा रहा है जिसमें लोकजीवन और प्रकृति के पक्ष बहुत कम उभर पाए हैं। नज़ीर अकबराबादी, इल्ताफ़ हुसैन हाली जैसे जिन कुछ शायरों ने इस रिवायत को तोड़ा है, उनमें एक प्रमुख नाम फ़िराक गोरखपुरी का भी है।

फ़िराक ने परंपरागत भावबोध और शब्द-भंडार का उपयोग करते हुए उसे नयी भाषा और नए विषयों से जोड़ा। उनके यहाँ सामाजिक दुख-दर्द व्यक्तिगत अनुभूति बनकर शायरी में ढला है। इंसान के हाथों इंसान पर जो गुज़रती है उसकी तल्ख सच्चाई और आने वाले कल के प्रति एक उम्मीद, दोनों को भारतीय संस्कृति और लोकभाषा के प्रतीकों से जोड़कर फ़िराक ने अपनी शायरी का अनूठा महल खड़ा किया। उर्दू शायरी अपने लाक्षणिक प्रयोगों और चुस्त मुहावरेदारी के लिए विख्यात है। शेर लिखे नहीं जाते, कहे जाते हैं। यानी एक तरह

© NCERT not to be republished

का संवाद प्रमुख होता है। मीर और गालिब की तरह फ़िराक ने भी कहने की इस शैली को साधकर आम-आदमी या साधारण-जन से अपनी बात कही है। प्रकृति, मौसम और भौतिक जगत के सौंदर्य को शायरी का विषय बनाते हुए कहा, "दिव्यता भौतिकता से पृथक वस्तु नहीं है। जिसे हम भौतिक कहते हैं वही दिव्य भी है।"

फ़िराक की रुबाई में हिंदी का एक घरेलू रूप दिखता है। भाषा सहज और प्रसंग भी सूरदास के वात्सल्य वर्णन की सादगी की याद दिलाता है। **मुझे चाँद चाहिए, मैया री, मैं चंद्र खिलौना लैहों** जैसे बिंब आज भी उन बच्चों के लिए एक मनलुभावन खिलौना है जो वातानुकूलित कमरों में बंद नहीं रहते, छत पर चटाई बिछाकर सोते हैं तथा **चंदामामा** के **नदिया किनारे** उतरने और कल्पित दूध-भात खाने की कल्पना से निहाल हैं। मामा भी तो एक साक्षात खिलौना है बच्चों का–खासकर उन बच्चों का जिनके जीवन में महँगे खिलौने भले न हों पर जो चंद्राभ रिश्तों का मर्म समझते हैं! एक कठिन दौर है यह–

घर लौट बहुत रोए माँ-बाप अकेले में,
मिट्टी के खिलौने भी सस्ते न थे मेले में

लोका देना, घुटनियों में लेकर कपड़े पिन्हाना, गेसुओं में कंघी करना, रूपवती मुखड़ा, नर्म दमक, जिदयाया बालक, रस की पुतली–ये कुछ विलक्षण प्रयोग हैं, हिंदी, उर्दू और लोकभाषा के अनूठे गठबंधन के जिसे गांधी जी हिंदुस्तानी के रूप में पल्लवित करना चाहते थे। माँ हाथ में आईना देकर बच्चे को बहला रही है–"देख, आईने में चाँद उतर आया है।" चाँद की परछाईं भी चाँद ही है। कल्पना की आँख का भला क्या मुकाबला। "रूपवती मुखड़े पै नर्म दमक" लाने के लिए छठे-छमासे, पर्व-त्योहार पर ही सही, कुछ नन्हीं फ़रमाइशें भी पूरी कर दी जाती हैं–दीवाली में चीनी-मिट्टी के खिलौने, राखी में 'बिजली की तरह चमक रहे लच्छे'।

रक्षाबंधन एक मीठा बंधन है। रक्षाबंधन के कच्चे धागों पर बिजली के लच्छे हैं। सावन में रक्षाबंधन आता है। सावन का जो संबंध झीनी घटा से है, घटा का जो संबंध बिजली से, वही संबंध भाई का बहन से।

पाठ में फ़िराक की एक गज़ल भी शामिल है। रुबाइयों की तरह ही फ़िराक की गज़लों में भी हिंदी समाज और उर्दू शायरी की परंपरा भरपूर है। इसका अद्भुत नमूना है यह गज़ल। यह गज़ल कुछ इस तरह बोलती है कि जिसमें दर्द भी है, एक शायर की ठसक भी है और साथ ही है काव्य-शिल्प की वह ऊँचाई, जो गज़ल की विशेषता मानी जाती है।

© NCERT not to be republished

रुबाइयाँ

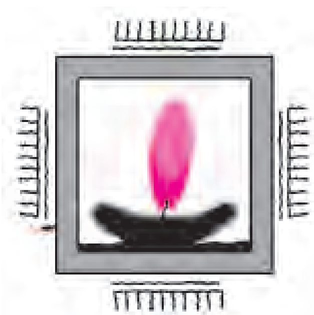

आँगन में लिए चाँद के टुकड़े को खड़ी
हाथों पे झुलाती है उसे गोद-भरी
रह-रह के हवा में जो लोका देती है
गूँज उठती है खिलखिलाते बच्चे की हँसी

नहला के छलके-छलके निर्मल जल से
उलझे हुए गेसुओं में कंघी करके
किस प्यार से देखता है बच्चा मुँह को
जब घुटनियों में ले के है पिन्हाती कपड़े

© NCERT not to be republished

दीवाली की शाम घर पुते और सजे
चीनी के खिलौने जगमगाते लावे
वो रूपवती मुखड़े पै इक नर्म दमक
बच्चे के घरौंदे में जलाती है दिए

आँगन में ठुनक रहा है ज़िदयाया है
बालक तो हई चाँद पै ललचाया है
दर्पण उसे दे के कह रही है माँ
देख आईने में चाँद उतर आया है

रक्षाबंधन की सुबह रस की पुतली
छायी है घटा गगन की हलकी-हलकी
बिजली की तरह चमक रहे हैं लच्छे
भाई के है बाँधती चमकती राखी

- *रुबाई उर्दू और फ़ारसी का एक छंद या लेखन शैली है, जिसमें चार पंक्तियाँ होती हैं। इसकी पहली, दूसरी और चौथी पंक्ति में तुक (काफ़िया) मिलाया जाता है तथा तीसरी पंक्ति स्वच्छंद होती है।*

ग़ज़ल

नौरस गुंचे पंखड़ियों की नाज़ुक गिरहें खोले हैं
या उड़ जाने को रंगो-बू गुलशन में पर तोले हैं।

तारे आँखें झपकावें हैं ज़र्रा-ज़र्रा सोये हैं
तुम भी सुनो हो यारो! शब में सन्नाटे कुछ बोले हैं

हम हों या किस्मत हो हमारी दोनों को इक ही काम मिला
किस्मत हमको रो लेवे है हम किस्मत को रो ले हैं।

जो मुझको बदनाम करे हैं काश वे इतना सोच सकें
मेरा परदा खोले हैं या अपना परदा खोले हैं

ये कीमत भी अदा करे हैं हम बदुरुस्ती-ए-होशो-हवास
तेरा सौदा करने वाले दीवाना भी हो ले हैं

तेरे गम का पासे-अदब है कुछ दुनिया का खयाल भी है
सबसे छिपा के दर्द के मारे चुपके-चुपके रो ले हैं

फ़ितरत का कायम है तवाज़ुन आलमे-हुस्नो-इश्क में भी
उसको उतना ही पाते हैं खुद को जितना खो ले हैं

आबो-ताब अश्आर न पूछो तुम भी आँखें रक्खो हो
ये जगमग बैतों की दमक है या हम मोती रोले हैं

ऐसे में तू याद आए है अंजुमने-मय में रिंदों को
रात गए गर्दूं पै फ़रिश्ते बाबे-गुनह जग खोले हैं

सदके फ़िराक एज़ाज़े-सुखन के कैसे उड़ा ली ये आवाज़
इन गज़लों के परदों में तो 'मीर' की गज़लें बोले हैं

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. शायर राखी के लच्छे को बिजली की चमक की तरह कहकर क्या भाव व्यंजित करना चाहता है?
2. खुद का परदा खोलने से क्या आशय है?
3. ***किस्मत हमको रो लेवे है हम किस्मत को रो ले हैं–*** इस पंक्ति में शायर की किस्मत के साथ तना-तनी का रिश्ता अभिव्यक्त हुआ है। चर्चा कीजिए।

टिप्पणी करें

(क) गोदी के चाँद और गगन के चाँद का रिश्ता।

(ख) सावन की घटाएँ व रक्षाबंधन का पर्व।

कविता के आसपास

1. इन रुबाइयों से हिंदी, उर्दू और लोकभाषा के मिले-जुले प्रयोगों को छाँटिए।
2. फ़िराक ने ***सुनो हो, रक्खो हो*** आदि शब्द मीर की शायरी के तर्ज़ पर इस्तेमाल किए हैं। ऐसी ही मीर की कुछ गज़लें ढूँढ़ कर लिखिए।

आपसदारी

कविता में एक भाव, एक विचार होते हुए भी उसका ***अंदाज़े बयाँ*** या भाषा के साथ उसका बर्ताव अलग-अलग रूप में अभिव्यक्ति पाता है। इस बात को ध्यान रखते हुए नीचे दी गई कविताओं को पढ़िए और दी गई फ़िराक की गज़ल/रुबाई में से समानार्थी पंक्तियाँ ढूँढ़िए।

(क) मैया मैं तो चंद्र खिलौना लैहों।

–सूरदास

(ख) वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान

–सुमित्रानंदन पंत

(ग) सीस उतारे भुईं धरे तब मिलिहैं करतार

–कबीर

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

लोका देना	उछाल-उछाल कर प्यार करने की एक क्रिया
हई	है ही
नौरस	नया रस
गुंचे	कली
गिरहें	गाँठ
ज़र्रा-ज़र्रा	कण-कण
शब	रात
बदुरुस्ती-ए-होशो-हवास	विवेक के साथ
पासे-अदब	लिहाज़
फ़ितरत	आदत
आबो-ताब अश्आर	चमक-दमक के साथ
बैत	शेर
अंजुमने-मय	शराब की महफ़िल
रिंद	शराबी
गर्दूं	आकाश, आसमान
तवाजुन	संतुलन
बाबे-गुनाह	पाप का अध्याय
ऐज़ाज़े-सुखन	बेहतरीन (प्रतिष्ठित) शायरी
आलमे-हुस्नो-इश्क	सौंदर्य और प्रेम का जगत

© NCERT not to be republished

12070CH10

उमाशंकर जोशी 10

जन्म : *सन् 1911, गुजरात में*

प्रमुख रचनाएँ : *विश्व शांति, गंगोत्री, निशीथ, प्राचीना, आतिथ्य, वसंत वर्षा, महाप्रस्थान, अभिज्ञा* (एकांकी); *सापनाभारा, शहीद* (कहानी); *श्रावणी मेणो, विसामो* (उपन्यास); *पारकांजण्या* (निबंध); *गोष्ठी, उघाड़ीबारी, क्लांतकवि, म्हारासॉनेट, स्वप्नप्रयाण* (संपादन)

सन् 1947 से ***संस्कृति*** पत्रिका *का* संपादन

निधन : *सन् 1988*

© NCERT not to be republished

तंग आ गया हूँ / बड़ों की अल्पता से / जी रहा हूँ / देख कर छोटों की बड़ाई

बीसवीं सदी की गुजराती कविता और साहित्य को नयी भंगिमा और नया स्वर देनेवाले उमाशंकर जोशी का साहित्यिक अवदान पूरे भारतीय साहित्य के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। उनको परंपरा का गहरा ज्ञान था। कालिदास के ***अभिज्ञान शाकुंतलम्*** *और भवभूति के* ***उत्तररामचरित*** *का उन्होंने गुजराती में अनुवाद किया। ऐसे अनुवाद गुजराती साहित्य की अभिव्यक्ति क्षमता को बढ़ाने वाले थे। बतौर कवि उमाशंकर जी ने गुजराती कविता को प्रकृति से जोड़ा, आम ज़िंदगी के अनुभव से परिचित कराया और नयी शैली दी। जीवन के सामान्य प्रसंगों पर सामान्य बोलचाल की भाषा में कविता लिखने वाले भारतीय आधुनिकतावादियों में अन्यतम हैं जोशी जी। कविता के साथ-साथ साहित्य की दूसरी विधाओं में भी उनका योगदान बहुमूल्य है, खासकर साहित्य की आलोचना में। निबंधकार के रूप में गुजराती साहित्य में बेजोड़ माने जाते हैं। उमाशंकर जोशी उन साहित्यिक व्यक्तित्व में हैं जिनका भारत की आज़ादी की लड़ाई से रिश्ता रहा। आज़ादी की लड़ाई के दौरान वे जेल भी गए।*

*यहाँ प्रस्तुत कविता **छोटा मेरा खेत** खेती के रूपक में कवि-कर्म के हर चरण को बाँधने की कोशिश के रूप में पढ़ी जा सकती है। कागज़ का पन्ना, जिस पर रचना शब्दबद्ध होती है, कवि को एक चौकोर खेत की तरह लगता है। इस खेत में किसी अंधड़ (आशय भावनात्मक आँधी से होगा) के प्रभाव से किसी क्षण एक बीज बोया जाता है। यह बीज-रचना विचार और अभिव्यक्ति का हो सकता है। यह मूल रूप कल्पना का सहारा लेकर विकसित होता है और इस प्रक्रिया में स्वयं विगलित हो जाता है। उससे शब्दों के अंकुर निकलते हैं और अंततः कृति एक पूर्ण स्वरूप ग्रहण करती है, जो कृषि-कर्म के लिहाज़ से पुष्पित-पल्लवित होने की स्थिति है। साहित्यिक कृति से जो अलौकिक रस-धारा फूटती है, वह क्षण में होने वाली रोपाई का ही परिणाम है। पर यह रस-धारा अनंत काल तक चलने वाली कटाई (उत्तम साहित्य कालजयी होता है और असंख्य पाठकों द्वारा असंख्य बार पढ़ा जाता है) से भी कम नहीं होती है। खेत में पैदा होने वाला अन्न कुछ समय के बाद समाप्त हो जाता है, किंतु साहित्य का रस कभी चुकता नहीं।*

***बगुलों के पंख** कविता एक सुंदर दृश्य की कविता है। सौंदर्य का अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कवियों ने कई युक्तियाँ अपनाई हैं, जिसमें से सबसे प्रचलित युक्ति है—सौंदर्य के ब्यौरों के चित्रात्मक वर्णन के साथ अपने मन पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का वर्णन। वस्तुगत और आत्मगत के संयोग की यह युक्ति पाठक को उस मूल सौंदर्य के काफ़ी निकट ले जाती है। जोशी जी की इस कविता में ऐसा ही है। कवि काले बादलों से भरे आकाश में पंक्ति बनाकर उड़ते सफ़ेद बगुलों को देखता है। वे कजरारे बादलों के ऊपर तैरती साँझ की श्वेत काया के समान प्रतीत होते हैं। यह दृश्य इतना नयनाभिराम है कि कवि और सब कुछ भूलकर उसी में अटका-सा रह जाता है। वह इस माया से अपने को बचाने की गुहार लगाता है। क्या यह सौंदर्य से बाँधने और बिंधने की चरम स्थिति को व्यक्त करने का एक तरीका है? प्रस्तुत दोनों कविताओं का गुजराती से हिंदी रूपांतरण रघुवीर चौधरी और भोलाभाई पटेल ने किया है।*

छोटा मेरा खेत

छोटा मेरा खेत चौकोना
कागज़ का एक पन्ना,
कोई अंधड़ कहीं से आया
क्षण का बीज वहाँ बोया गया।

कल्पना के रसायनों को पी
बीज गल गया निःशेष;
शब्द के अंकुर फूटे,
पल्लव-पुष्पों से नमित हुआ विशेष।

झूमने लगे फल,
रस अलौकिक,
अमृत धाराएँ फूटतीं
रोपाई क्षण की,
कटाई अनंतता की
लुटते रहने से जरा भी नहीं कम होती।

रस का अक्षय पात्र सदा का
छोटा मेरा खेत चौकोना।

© NCERT not to be republished

© NCERT not to be republished

बगुलों के पंख

नभ में पाँती-बँधे बगुलों के पंख,
चुराए लिए जातीं वे मेरी आँखें।
कजरारे बादलों की छाई नभ छाया,
तैरती साँझ की सतेज श्वेत काया।
हौले हौले जाती मुझे बाँध निज माया से।
उसे कोई तनिक रोक रक्खो।
वह तो चुराए लिए जाती मेरी आँखें
नभ में पाँती-बँधी बगुलों की पाँखें।

अभ्यास

कविता के साथ

1. छोटे चौकोने खेत को कागज़ का पन्ना कहने में क्या अर्थ निहित है?
2. रचना के संदर्भ में ***अंधड़*** और ***बीज*** क्या हैं?
3. ***रस का अक्षयपात्र*** से कवि ने रचनाकर्म की किन विशेषताओं की ओर इंगित किया है?
4. व्याख्या करें-
   1. शब्द के अंकुर फूटे,
      पल्लव-पुष्पों से नमित हुआ विशेष।
   2. रोपाई क्षण की,
      कटाई अनंतता की
      लुटते रहने से ज़रा भी नहीं कम होती।

कविता के आसपास

1. शब्दों के माध्यम से जब कवि दृश्यों, चित्रों, ध्वनि-योजना अथवा रूप-रस-गंध को हमारे ऐन्द्रिक अनुभवों में साकार कर देता है तो बिंब का निर्माण होता है। इस आधार पर प्रस्तुत कविता से बिंब की खोज करें।
2. जहाँ उपमेय में उपमान का आरोप हो, रूपक कहलाता है। इस कविता में से रूपक का चुनाव करें।

कला की बात

- बगुलों के पंख कविता को पढ़ने पर आपके मन में कैसे चित्र उभरते हैं? उनकी किसी भी अन्य कला माध्यम में अभिव्यक्ति करें।

© NCERT not to be republished

गद्य खंड

© NCERT not to be republished

शिक्षा और स्वतंत्रता

– बच्चों को स्वाधीन बनाओ –

© NCERT
not to be republished

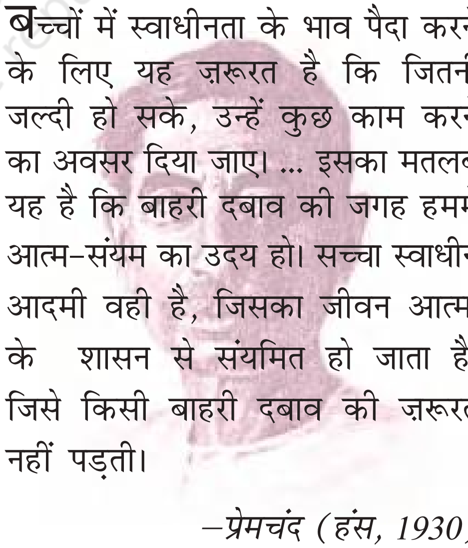

बच्चों में स्वाधीनता के भाव पैदा करने के लिए यह ज़रूरत है कि जितनी जल्दी हो सके, उन्हें कुछ काम करने का अवसर दिया जाए। ... इसका मतलब यह है कि बाहरी दबाव की जगह हममें आत्म–संयम का उदय हो। सच्चा स्वाधीन आदमी वही है, जिसका जीवन आत्मा के शासन से संयमित हो जाता है, जिसे किसी बाहरी दबाव की ज़रूरत नहीं पड़ती।

–प्रेमचंद (हंस, 1930)

12070CH11

महादेवी वर्मा 11

__जन्म :__ सन् 1907, फ़र्रूखाबाद (उत्तर प्रदेश)

***प्रमुख रचनाएँ :** दीपशिखा, यामा (काव्य-संग्रह); शृंखला की कड़ियाँ, आपदा, संकल्पिता, भारतीय संस्कृति के स्वर (निबंध-संग्रह); अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी, मेरा परिवार (संस्मरण/रेखाचित्र)*

***प्रमुख पुरस्कार :** ज्ञानपीठ पुरस्कार ('यामा' संग्रह के लिए 1983 ई. में), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का **भारत भारती** पुरस्कार, पद्मभूषण (1956 ई.)*

***निधन :** सन् 1987, इलाहाबाद*

> *संसार के मानव-समुदाय में वही व्यक्ति स्थान और सम्मान पा सकता है, वही जीवित कहा जा सकता है जिसके हृदय और मस्तिष्क ने समुचित विकास पाया हो और जो अपने व्यक्तित्व द्वारा मनुष्य समाज से रागात्मक के अतिरिक्त बौद्धिक संबंध भी स्थापित कर सकने में समर्थ हो।*

© NCERT not to be republished

साहित्य सेवी और समाज सेवी दोनों रूपों में महादेवी वर्मा की प्रतिष्ठा रही है। महात्मा गांधी की दिखाई राह पर अपना जीवन समर्पित कर उन्होंने शिक्षा और समाज-कल्याण के क्षेत्र में निरंतर कार्य किया। नारी-समाज में शिक्षा-प्रसार के उद्देश्य से उन्होंने प्रयाग महिला विद्यापीठ की स्थापना की। साहित्य जगत में महादेवी वर्मा की प्रतिष्ठा बहुमुखी प्रतिभा के रचनाकार के रूप में रही है। अगर कविता के क्षेत्र में वे छायावाद के चार स्तंभों में से एक मानी जाती हैं (अन्य तीन हैं–पंत, प्रसाद और निराला), तो अपने निबंधों और संस्मरणात्मक रेखाचित्रों के कारण एक अप्रतिम गद्यकार के रूप में उनकी चर्चा होती रही है। कविता और गद्य इन दोनों क्षेत्रों में उनकी प्रतिभा अलग-अलग स्वभाव लेकर सक्रिय हुई दिखती है। कविताओं में वे अपनी आंतरिक वेदना और पीड़ा को व्यक्त करती हुई इस लोक से परे किसी और सत्ता की ओर अभिमुख दिखलाई पड़ती हैं, तो अपने गद्य में उनका गहरा सामाजिक सरोकार स्थान पाता है। उनकी शृंखला की कड़ियाँ (1942 ई.) उस समय की अद्वितीय रचना

है, जो हिंदी में स्त्री-विमर्श की भव्य प्रस्तावना है। उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र अपने आस पास के ऐसे चरित्रों और प्रसंगों को लेकर लिखे गए हैं, जिनकी साधारणता हमारा ध्यान नहीं खींच पाती लेकिन महादेवी जी की मर्मभेदी और करुणामयी दृष्टि उन चरित्रों की साधारणता में असाधारण तत्त्वों का संधान करती है। इस तरह समाज के शोषित-पीड़ित तबके को उन्होंने अपनी गद्य-रचनाओं में नायकत्व प्रदान किया है। उनके इस प्रयास ने हिंदी के साहित्यिक समाज पर ऐसा गहरा असर डाला कि संस्मरणात्मक रेखाचित्र की विधा के लिए शोषित-पीड़ित आम जन को विषय-वस्तु के रूप में मान्यता मिल गई है।

भक्तिन *महादेवी जी का प्रसिद्ध संस्मरणात्मक रेखाचित्र है जो* ***स्मृति की रेखाएँ*** *में संकलित है। इसमें महादेवी जी ने अपनी सेविका भक्तिन के अतीत और वर्तमान का परिचय देते हुए उसके व्यक्तित्व का बहुत दिलचस्प खाका खींचा है। महादेवी के घर में काम शुरू करने से पहले उसने कैसे एक संघर्षशील, स्वाभिमानी और कर्मठ जीवन जिया, कैसे पितृसत्तात्मक-मान्यताओं और छल-छद्म भरे समाज में अपने और अपनी बेटियों के हक की लड़ाई लड़ती रही और उसमें हार कर कैसे ज़िंदगी की राह पूरी तरह बदल लेने के निर्णय तक पहुँची। इसका अत्यंत संवेदनशील चित्रण इस पाठ में हुआ है। इसके साथ, भक्तिन महादेवी जी के जीवन में आकर छा जाने वाली एक ऐसी परिस्थिति के रूप में दिखलाई पड़ती है, जिसके कारण लेखिका के व्यक्तित्व के कई अनछुए / प्रच्छन्न आयाम उद्घाटित होते चलते हैं। इसी कारण अपने व्यक्तित्व का ज़रूरी अंश मानकर वे भक्तिन को खोना नहीं चाहतीं। समग्रत: इस पाठ को परिस्थितिवश अक्खड़ बनी, पर महादेवी के प्रति अनमोल आत्मीयता से भरी भक्तिन के बहाने स्त्री-अस्मिता की संघर्षपूर्ण आवाज़ के रूप में भी पढ़ा जाना चाहिए।*

© NCERT not to be republished

भक्तिन

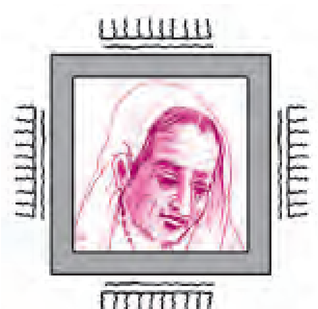

छोटे कद और दुबले शरीरवाली भक्तिन अपने पतले ओठों के कोनों में दृढ़ संकल्प और छोटी आँखों में एक विचित्र समझदारी लेकर जिस दिन पहले-पहले मेरे पास आ उपस्थित हुई थी तब से आज तक एक युग का समय बीत चुका है। पर जब कोई जिज्ञासु उससे इस संबंध में प्रश्न कर बैठता है, तब वह पलकों को आधी पुतलियों तक गिराकर और चिंतन की मुद्रा में ठुड्डी को कुछ ऊपर उठाकर विश्वास भरे कंठ से उत्तर देती है–'तुम पचै का का बताई–यहै पचास बरिस से संग रहित है।' इस हिसाब से मैं पचहत्तर की ठहरती हूँ और वह सौ वर्ष की आयु भी पार कर जाती है, इसका भक्तिन को पता नहीं। पता हो भी, तो संभवतः वह मेरे साथ बीते हुए समय में रत्ती भर भी कम न करना चाहेगी। मुझे तो विश्वास होता जा रहा है कि कुछ वर्ष और बीत जाने पर वह मेरे साथ रहने के समय को खींच कर सौ वर्ष तक पहुँचा देगी, चाहे उसके हिसाब से मुझे डेढ़ सौ वर्ष की असंभव आयु का भार क्यों न ढोना पड़े।

सेवक-धर्म में हनुमान जी से स्पर्द्धा करने वाली भक्तिन किसी अंजना की पुत्री न होकर एक अनामधन्या गोपालिका की कन्या है–नाम है लछमिन अर्थात लक्ष्मी। पर जैसे मेरे नाम की विशालता मेरे लिए दुर्वह है, वैसे ही लक्ष्मी की समृद्धि भक्तिन के कपाल की कुंचित रेखाओं में नहीं बँध सकी। वैसे तो जीवन में प्रायः सभी को अपने-अपने नाम का विरोधाभास लेकर जीना पड़ता है; पर भक्तिन बहुत समझदार है, क्योंकि वह अपना समृद्धि-सूचक नाम किसी को बताती नहीं। केवल जब नौकरी की खोज में आई थी, तब ईमानदारी का परिचय देने के लिए उसने शेष इतिवृत्त के साथ यह भी बता दिया; पर इस प्रार्थना के साथ कि मैं कभी नाम का उपयोग न करूँ। उपनाम रखने की प्रतिभा होती, तो मैं सबसे पहले उसका प्रयोग अपने ऊपर करती, इस तथ्य को वह देहातिन क्या जाने, इसी से जब मैंने कंठी माला देखकर उसका नया नामकरण किया तब वह भक्तिन-जैसे कवित्वहीन नाम को पाकर भी गद्गद हो उठी।

भक्तिन के जीवन का इतिवृत्त बिना जाने हुए उसके स्वभाव को पूर्णतः क्या अंशतः समझना भी कठिन होगा। वह ऐतिहासिक झूँसी में गाँव-प्रसिद्ध एक सूरमा की

© NCERT not to be republished

एकलौती बेटी ही नहीं, विमाता की किंवदंती बन जाने वाली ममता की छाया में भी पली है। पाँच वर्ष की वय में उसे हँडिया ग्राम के एक संपन्न गोपालक की सबसे छोटी पुत्रवधू बनाकर पिता ने शास्त्र से दो पग आगे रहने की ख्याति कमाई और नौ वर्षीया युवती का गौना देकर विमाता ने, बिना माँगे पराया धन लौटाने वाले महाजन का पुण्य लूटा।

पिता का उस पर अगाध प्रेम होने के कारण स्वभावतः ईर्ष्यालु और संपत्ति की रक्षा में सतर्क विमाता ने उनके मरणांतक रोग का समाचार तब भेजा, जब वह मृत्यु की सूचना भी बन चुका था। रोने-पीटने के अपशकुन से बचने के लिए सास ने भी उसे कुछ न बताया। बहुत दिन से नैहर नहीं गई, सो जाकर देख आवे, यही कहकर और पहना-उढ़ाकर सास ने उसे विदा कर दिया। इस अप्रत्याशित अनुग्रह ने उसके पैरों में जो पंख लगा दिए थे, वे गाँव की सीमा में पहुँचते ही झड़ गए। 'हाय लछमिन अब आई' की अस्पष्ट पुनरावृत्तियाँ और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण दृष्टियाँ उसे घर तक ठेल ले गईं। पर वहाँ न पिता का चिह्न शेष था, न विमाता के व्यवहार में शिष्टाचार का लेश था। दुख से शिथिल और अपमान से जलती हुई वह उस घर में पानी भी बिना पिए उलटे पैरों ससुराल लौट पड़ी। सास को खरी-खोटी सुनाकर उसने विमाता पर आया हुआ क्रोध शांत किया और पति के ऊपर गहने फेंक-फेंककर उसने पिता के चिर विछोह की मर्मव्यथा व्यक्त की।

जीवन के दूसरे परिच्छेद में भी सुख की अपेक्षा दुख ही अधिक है। जब उसने गेहुँए रंग और बटिया जैसे मुख वाली पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले तब सास और जिठानियों ने ओठ बिचकाकर उपेक्षा प्रकट की। उचित भी था, क्योंकि सास तीन-तीन कमाऊ वीरों की विधात्री बनकर मचिया के ऊपर विराजमान पुरखिन के पद पर अभिषिक्त हो चुकी थी और दोनों जिठानियाँ काक-भुशंडी जैसे काले लालों की क्रमबद्ध सृष्टि करके इस पद के लिए उम्मीदवार थीं। छोटी बहू के लीक छोड़कर चलने के कारण उसे दंड मिलना आवश्यक हो गया।

जिठानियाँ बैठकर लोक-चर्चा करतीं और उनके कलूटे लड़के धूल उड़ाते; वह मट्ठा फेरती, कूटती, पीसती, राँधती और उसकी नन्ही लड़कियाँ गोबर उठातीं, कंडे पाथतीं। जिठानियाँ अपने भात पर सफ़ेद राब रखकर गाढ़ा दूध डालतीं और अपने लड़कों को औटते हुए दूध पर से मलाई उतारकर खिलातीं। वह काले गुड़ की डली के साथ कठौती में मट्ठा पाती और उसकी लड़कियाँ चने-बाजरे की घुघरी चबातीं ।

इस दंड-विधान के भीतर कोई ऐसी धारा नहीं थी, जिसके अनुसार खोटे सिक्कों की टकसाल-जैसी पत्नी से पति को विरक्त किया जा सकता। सारी चुगली-चबाई की परिणति, उसके पत्नी-प्रेम को बढ़ाकर ही होती थी। जिठानियाँ बात-बात पर धमाधम पीटी-कूटी जातीं; पर उसके पति ने उसे कभी उँगली भी नहीं छुआई। वह बड़े बाप की बड़ी बात वाली

बेटी को पहचानता था। इसके अतिरिक्त परिश्रमी, तेजस्विनी और पति के प्रति रोम-रोम से सच्ची पत्नी को वह चाहता भी बहुत रहा होगा, क्योंकि उसके प्रेम के बल पर ही पत्नी ने अलगौझा करके सबको अँगूठा दिखा दिया। काम वही करती थी, इसलिए गाय-भैंस, खेत-खलिहान, अमराई के पेड़ आदि के संबंध में उसी का ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। उसने छाँट-छाँट कर, ऊपर से असंतोष की मुद्रा के साथ और भीतर से पुलकित होते हुए जो कुछ लिया, वह सबसे अच्छा भी रहा, साथ ही परिश्रमी दंपति के निरंतर प्रयास से उसका सोना बन जाना भी स्वाभाविक हो गया।

धूमधाम से बड़ी लड़की का विवाह करने के उपरांत, पति ने घरौंदे से खेलती हुई दो कन्याओं और कच्ची गृहस्थी का भार उनतीस वर्ष की पत्नी पर छोड़कर संसार से विदा ली। जब वह मरा, तब उसकी अवस्था छत्तीस वर्ष से कुछ ही अधिक रही होगी; पर पत्नी आज उसे बुढ़ऊ कह कर स्मरण करती है। भक्तिन सोचती है कि जब वह बूढ़ी हो गई, तब क्या परमात्मा के यहाँ वे भी न बुढ़ा गए होंगे, अतः उन्हें बुढ़ऊ न कहना उनका घोर अपमान है।

हाँ, तो भक्तिन के हरे-भरे खेत, मोटी-ताज़ी गाय-भैंस और फलों से लदे पेड़ देखकर जेठ-जिठौतों के मुँह में पानी भर आना ही स्वाभाविक था। इन सबकी प्राप्ति तो तभी संभव थी, जब भइयहू दूसरा घर कर लेती; पर जन्म से खोटी भक्तिन इनके चकमे में आई ही नहीं। उसने क्रोध से पाँव पटक-पटककर आँगन को कंपायमान करते हुए कहा– 'हम कुकुरी बिलारी न होयँ, हमार मन पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब और राज करब, समुझे रहौ।'

उसने ससुर, अजिया ससुर और जाने कै पीढ़ियों के ससुरगणों की उपार्जित जगह-ज़मीन में से सुई की नोक बराबर भी देने की उदारता नहीं दिखाई। इसके अतिरिक्त गुरु से कान फुँकवा, कंठी बाँध और पति के नाम पर घी से चिकने केशों को समर्पित कर अपने कभी न टलने की घोषणा कर दी। भविष्य में भी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए उसने छोटी लड़कियों के हाथ पीले कर उन्हें ससुराल पहुँचाया और पति के चुने हुए बड़े दामाद को घरजमाई बनाकर रखा। इस प्रकार उसके जीवन का तीसरा परिच्छेद आरंभ हुआ।

भक्तिन का दुर्भाग्य भी उससे कम हठी नहीं था, इसी से किशोरी से युवती होते ही बड़ी लड़की भी विधवा हो गई। भइयहू से पार न पा सकने वाले जेठों और काकी को परास्त करने के लिए कटिबद्ध जिठौतों ने आशा की एक किरण देख पाई। विधवा बहिन के गठबंधन के लिए बड़ा जिठौत अपने तीतर लड़ाने वाले साले को बुला लाया, क्योंकि उसका हो जाने पर सब कुछ उन्हीं के अधिकार में रहता। भक्तिन की लड़की भी माँ से कम समझदार नहीं थी, इसी से उसने वर को नापसंद कर दिया। बाहर के बहनोई का आना चचेरे

© NCERT not to be republished

भाइयों के लिए सुविधाजनक नहीं था, अतः यह प्रस्ताव जहाँ-का-तहाँ रह गया। तब वे दोनों माँ-बेटी खूब मन लगाकर अपनी संपत्ति की देख-भाल करने लगीं और 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' की कहावत चरितार्थ करने वाले वर के समर्थक उसे किसी-न-किसी प्रकार पति की पदवी पर अभिषिक्त करने का उपाय सोचने लगे।

एक दिन माँ की अनुपस्थिति में वर महाशय ने बेटी की कोठरी में घुस कर भीतर से द्वार बंद कर लिया और उसके समर्थक गाँववालों को बुलाने लगे। युवती ने जब इस डकैत वर की मरम्मत कर कुंडी खोली, तब पंच बेचारे समस्या में पड़ गए। तीतरबाज़ युवक कहता था, वह निमंत्रण पाकर भीतर गया और युवती उसके मुख पर अपनी पाँचों उँगलियों के उभार में इस निमंत्रण के अक्षर पढ़ने का अनुरोध करती थी। अंत में दूध-का-दूध पानी-का-पानी करने के लिए पंचायत बैठी और सबने सिर हिला-हिलाकर इस समस्या का मूल कारण कलियुग को स्वीकार किया। अपीलहीन फ़ैसला हुआ कि चाहे उन दोनों में एक सच्चा हो चाहे दोनों झूठे; पर जब वे एक कोठरी से निकले, तब उनका पति-पत्नी के रूप में रहना ही कलियुग के दोष का परिमार्जन कर सकता है। अपमानित बालिका ने ओठ काटकर लहू निकाल लिया और माँ ने आग्नेय नेत्रों से गले पड़े दामाद को देखा। संबंध कुछ सुखकर नहीं हुआ, क्योंकि दामाद अब निश्चिंत होकर तीतर लड़ाता था और बेटी विवश क्रोध से जलती रहती थी। इतने यत्न से सँभाले हुए गाय-ढोर, खेती-बारी जब पारिवारिक द्वेष में ऐसे झुलस गए कि लगान अदा करना भी भारी हो गया, सुख से रहने की कौन कहे। अंत में एक बार लगान न पहुँचने पर ज़मींदार ने भक्तिन को बुलाकर दिन भर कड़ी धूप में खड़ा रखा। यह अपमान तो उसकी कर्मठता में सबसे बड़ा कलंक बन गया, अतः दूसरे ही दिन भक्तिन कमाई के विचार से शहर आ पहुँची।

घुटी हुई चाँद को मोटी मैली धोती से ढाँके और मानो सब प्रकार की आहट सुनने के लिए कान कपड़े से बाहर निकाले हुए भक्तिन जब मेरे यहाँ सेवक-धर्म में दीक्षित हुई, तब उसके जीवन के चौथे और संभवतः अंतिम परिच्छेद का जो अथ हुआ, उसकी इति अभी दूर है।

भक्तिन की वेश-भूषा में गृहस्थ और वैरागी का सम्मिश्रण देखकर मैंने शंका से प्रश्न किया—क्या तुम खाना बनाना जानती हो! उत्तर में उसने, ऊपर के ओठ को सिकोड़ और नीचे के अधर को कुछ बढ़ा कर आश्वासन की मुद्रा के साथ कहा—ई कउन बड़ी बात आय। रोटी बनाय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छँउक सकित है, अउर बाकी का रहा!

दूसरे दिन तड़के ही सिर पर कई लोटे औंधा कर उसने मेरी धुली धोती जल के छींटों से पवित्र कर पहनी और पूर्व के अंधकार और मेरी दीवार से फूटते हुए सूर्य और पीपल का, दो लोटे जल से अभिनंदन किया। दो मिनट नाक दबाकर जप करने के उपरांत जब वह

कोयले की मोटी रेखा से अपने साम्राज्य की सीमा निश्चित कर चौके में प्रतिष्ठित हुई, तब मैंने समझ लिया कि इस सेवक का साथ टेढ़ी खीर है। अपने भोजन के संबंध में नितांत वीतराग होने पर भी मैं पाक-विद्या के लिए परिवार में प्रख्यात हूँ और कोई भी पाक-कुशल दूसरे के काम में नुक्ताचीनी बिना किए रह नहीं सकता। पर जब छूत-पाक पर प्राण देनेवाले व्यक्तियों का, बात-बात पर भूखा मरना स्मरण हो आया और भक्तिन की शंकाकुल दृष्टि में छिपे हुए निषेध का अनुभव किया, तब कोयले की रेखा मेरे लिए लक्ष्मण के धनुष से खींची हुई रेखा के सामने दुर्लंघ्य हो उठी। निरुपाय अपने कमरे में बिछौने में पड़कर नाक के ऊपर खुली हुई पुस्तक स्थापित कर मैं चौके में पीढ़े पर आसीन अनधिकारी को भूलने का प्रयास करने लगी।

भोजन के समय जब मैंने अपनी निश्चित सीमा के भीतर निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया, तब भक्तिन ने प्रसन्नता से लबालब दृष्टि और आत्मतुष्टि से आप्लावित मुसकुराहट के साथ मेरी फूल की थाली में एक अंगुल मोटी और गहरी काली चित्तीदार चार रोटियाँ रखकर उसे टेढ़ी कर गाढ़ी दाल परोस दी। पर जब उसके उत्साह पर तुषारपात करते हुए मैंने रुआँसे भाव से कहा– 'यह क्या बनाया है?' तब वह हतबुद्धि हो रही।

रोटियाँ अच्छी सेंकने के प्रयास में कुछ अधिक खरी हो गई हैं; पर अच्छी हैं। तरकारियाँ थीं, पर जब दाल बनी है तब उनका क्या काम–शाम को दाल न बनाकर तरकारी बना दी जाएगी। दूध-घी मुझे अच्छा नहीं लगता, नहीं तो सब ठीक हो जाता। अब न हो तो अमचूर और लाल मिर्च की चटनी पीस ली जावे। उससे भी काम न चले, तो वह गाँव से लाई हुई गठरी में से थोड़ा-सा गुड़ दे देगी। और शहर के लोग क्या कलाबत्तू खाते हैं? फिर वह कुछ अनाड़िन या फूहड़ नहीं। उसके ससुर, पितिया ससुर, अजिया सास आदि ने उसकी पाक-कुशलता के लिए न जाने कितने मौखिक प्रमाण-पत्र दे डाले हैं।

भक्तिन के इस सारगर्भित लेक्चर का प्रभाव यह हुआ कि मैं मीठे से विरक्ति के कारण बिना गुड़ के और घी से अरुचि के कारण रूखी दाल से एक मोटी रोटी खाकर बहुत ठाठ से यूनिवर्सिटी पहुँची और न्याय-सूत्र पढ़ते-पढ़ते शहर और देहात के जीवन के इस अंतर पर विचार करती रही।

अलग भोजन की व्यवस्था करनी पड़ी थी, अपने गिरते हुए स्वास्थ्य और परिवारवालों की चिंता-निवारण के लिए, पर प्रबंध ऐसा हो गया कि उपचार का प्रश्न ही खो गया। इस देहाती वृद्धा ने जीवन की सरलता के प्रति मुझे इतना जाग्रत कर दिया था कि मैं अपनी असुविधाएँ छिपाने लगी, सुविधाओं की चिंता करना तो दूर की बात।

इसके अतिरिक्त भक्तिन का स्वभाव ही ऐसा बन चुका है कि वह दूसरों को अपने मन के अनुसार बना लेना चाहती है; पर अपने संबंध में किसी प्रकार के परिवर्तन की

© NCERT not to be republished

कल्पना तक उसके लिए संभव नहीं। इसी से आज मैं अधिक देहाती हूँ; पर उसे शहर की हवा नहीं लग पाई। मकई का, रात को बना दलिया, सवेरे मट्ठे से सोंधा लगता है। बाजरे के तिल लगाकर बनाए हुए पुए गरम कम अच्छे लगते हैं। ज्वार के भुने हुए भुट्टे के हरे दानों की खिचड़ी स्वादिष्ट होती है। सफ़ेद महुए की लपसी संसार भर के हलवे को लजा सकती है; आदि वह मुझे क्रियात्मक रूप से सिखाती रहती है; पर यहाँ का रसगुल्ला तक भक्तिन के पोपले मुँह में प्रवेश करने का सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सका। मेरे रात-दिन नाराज़ होने पर भी उसने साफ़ धोती पहनना नहीं सीखा; पर मेरे स्वयं धोकर फैलाए हुए कपड़ों को भी वह तह करने के बहाने सिलवटों से भर देती है। मुझे उसने अपनी भाषा की अनेक दंतकथाएँ कंठस्थ करा दी हैं; पर पुकारने पर वह 'आँय' के स्थान में 'जी' कहने का शिष्टाचार भी नहीं सीख सकती।

भक्तिन अच्छी है, यह कहना कठिन होगा, क्योंकि उसमें दुर्गुणों का अभाव नहीं। वह सत्यवादी हरिश्चंद्र नहीं बन सकती; पर 'नरो वा कुंजरो वा' कहने में भी विश्वास नहीं करती। मेरे इधर-उधर पड़े पैसे-रुपये, भंडार-घर की किसी मटकी में कैसे अंतरहित हो जाते हैं, यह रहस्य भी भक्तिन जानती है। पर, उस संबंध में किसी के संकेत करते ही वह उसे शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दे डालती है, जिसको स्वीकार कर लेना किसी तर्क-शिरोमणि के लिए संभव नहीं। यह उसका अपना घर ठहरा, पैसा-रुपया जो इधर-उधर पड़ा देखा, सँभालकर रख लिया। यह क्या चोरी है! उसके जीवन का परम कर्तव्य मुझे प्रसन्न रखना है—जिस बात से मुझे क्रोध आ सकता है, उसे बदलकर इधर-उधर करके बताना, क्या झूठ है! इतनी चोरी और इतना झूठ तो धर्मराज महाराज में भी होगा, नहीं तो वे भगवान जी को कैसे प्रसन्न रख सकते और संसार को कैसे चला सकते!

शास्त्र का प्रश्न भी भक्तिन अपनी सुविधा के अनुसार सुलझा लेती है। मुझे स्त्रियों का सिर घुटाना अच्छा नहीं लगता, अतः मैंने भक्तिन को रोका। उसने अकुंठित भाव से उत्तर दिया कि शास्त्र में लिखा है। कुतूहलवश मैं पूछ ही बैठी—'क्या लिखा है?' तुरंत उत्तर मिला—'तीरथ गए मुँडाए सिद्ध।' कौन-से शास्त्र का यह रहस्यमय सूत्र है, यह जान लेना मेरे लिए संभव ही नहीं था। अतः मैं हारकर मौन हो रही और भक्तिन का चूड़ाकर्म हर बृहस्पतिवार को, एक दरिद्र नापित के गंगाजल से धुले उस्तरे द्वारा यथाविधि निष्पन्न होता रहा।

पर वह मूर्ख है या विद्या-बुद्धि का महत्त्व नहीं जानती, यह कहना असत्य कहना है। अपने विद्या के अभाव को वह मेरी पढ़ाई-लिखाई पर अभिमान करके भर लेती है। एक बार जब मैंने सब काम करनेवालों से अँगूठे के निशान के स्थान में हस्ताक्षर लेने का नियम बनाया तब भक्तिन बड़े कष्ट में पड़ गई, क्योंकि एक तो उससे पढ़ने की मुसीबत नहीं उठाई जा सकती थी, दूसरे सब गाड़ीवान दाइयों के साथ बैठकर पढ़ना उसकी वयोवृद्धता का

अपमान था। अतः उसने कहना आरंभ किया–'हमारे मलकिन तौ रात-दिन कितबियन माँ गड़ी रहती हैं। अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर-गिरिस्ती कउन देखी-सुनी।'

पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले दोनों पर इस तर्क का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भक्तिन इंस्पेक्टर के समान क्लास में घूम-घूमकर किसी के ***आ इ*** की बनावट किसी के हाथ की मंथरता, किसी की बुद्धि की मंदता पर टीका-टिप्पणी करने का अधिकार पा गई। उसे तो अँगूठा निशानी देकर वेतन लेना नहीं होता, इसी से बिना पढ़े ही वह पढ़ने वालों की गुरु बन बैठी। वह अपने तर्क ही नहीं, तर्कहीनता के लिए भी प्रमाण खोज लेने में पटु है। अपने-आपको महत्त्व देने के लिए ही वह अपनी मालकिन को असाधारणता देना चाहती है; पर इसके लिए भी प्रमाण की खोज-ढूँढ़ आवश्यक हो उठती है।

जब एक बार मैं उत्तर-पुस्तकों और चित्रों को लेकर व्यस्त थी, तब भक्तिन सबसे कहती घूमी– 'ऊ बिचरिअउ तौ रात-दिन काम माँ झुकी रहती हैं, अउर तुम पचै घूमती फिरती हौ! चलौ तनिक हाथ बटाय लेउ।' सब जानते थे कि ऐसे कामों में हाथ नहीं बटाया जा सकता, अतः उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट कर भक्तिन से पिंड छुड़ाया। बस इसी प्रमाण के आधार पर उसकी सब

© NCERT not to be republished

अतिशयोक्तियाँ अमरबेल-सी फैलने लगीं—उसकी मालकिन-जैसा काम कोई जानता ही नहीं, इसी से तो बुलाने पर भी कोई हाथ बटाने की हिम्मत नहीं करता।

पर वह स्वयं कोई सहायता नहीं दे सकती, इसे मानना अपनी हीनता स्वीकार करना है—इसी से वह द्वार पर बैठकर बार-बार कुछ काम बताने का आग्रह करती है। कभी उत्तर-पुस्तकों को बाँधकर, कभी अधूरे चित्र को कोने में रखकर, कभी रंग की प्याली धोकर और कभी चटाई को आँचल से झाड़कर वह जैसी सहायता पहुँचाती है, उससे भक्तिन का अन्य व्यक्तियों से अधिक बुद्धिमान होना प्रमाणित हो जाता है। वह जानती है कि जब दूसरे मेरा हाथ बटाने की कल्पना तक नहीं कर सकते, तब वह सहायता की इच्छा को क्रियात्मक रूप देती है, इसी से मेरी किसी पुस्तक के प्रकाशित होने पर उसके मुख पर प्रसन्नता की आभा वैसे ही उद्भासित हो उठती है जैसे स्विच दबाने से बल्ब में छिपा आलोक। वह सूने में उसे बार-बार छूकर, आँखों के निकट ले जाकर और सब ओर घुमा-फिराकर मानो अपनी सहायता का अंश खोजती है और उसकी दृष्टि में व्यक्त आत्मघोष कहता है कि उसे निराश नहीं होना पड़ता। यह स्वाभाविक भी है। किसी चित्र को पूरा करने में व्यस्त, मैं जब बार-बार कहने पर भी भोजन के लिए नहीं उठती, तब वह कभी दही का शर्बत, कभी तुलसी की चाय वहीं देकर भूख का कष्ट नहीं सहने देती।

दिन भर के कार्य-भार से छुट्टी पाकर जब मैं कोई लेख समाप्त करने या भाव को छंदबद्ध करने बैठती हूँ, तब छात्रावास की रोशनी बुझ चुकती है, मेरी हिरनी सोना तख्त के पैताने फ़र्श पर बैठकर पागुर करना बंद कर देती है, कुत्ता बसंत छोटी मचिया पर पंजों में मुख रखकर आँखें मूँद लेता है और बिल्ली गोधूलि मेरे तकिए पर सिकुड़कर सो रहती है।

पर मुझे रात की निस्तब्धता में अकेली न छोड़ने के विचार से कोने में दरी के आसन पर बैठकर बिजली की चकाचौंध से आँखें मिचमिचाती हुई भक्तिन, प्रशांत भाव से जागरण करती है। वह ऊँघती भी नहीं, क्योंकि मेरे सिर उठाते ही उसकी धुँधली दृष्टि मेरी आँखों का अनुसरण करने लगती है। यदि मैं सिरहाने रखे रैक की ओर देखती हूँ, तो वह उठकर आवश्यक पुस्तक का रंग पूछती है, यदि मैं कलम रख देती हूँ, तो वह स्याही उठा लाती है और यदि मैं कागज़ एक ओर सरका देती हूँ, तो वह दूसरी फ़ाइल टटोलती है।

बहुत रात गए सोने पर भी मैं जल्दी ही उठती हूँ और भक्तिन को तो मुझसे भी पहले जागना पड़ता है—सोना उछल-कूद के लिए बाहर जाने को आकुल रहती है, बसंत नित्य कर्म के लिए दरवाज़ा खुलवाना चाहता है और गोधूलि चिड़ियों की चहचहाहट में शिकार का आमंत्रण सुन लेती है।

मेरे भ्रमण की भी एकांत साथिन भक्तिन ही रही है। बदरी-केदार आदि के ऊँचे-नीचे और तंग पहाड़ी रास्ते में जैसे वह हठ करके मेरे आगे चलती रही है, वैसे ही गाँव की

धूलभरी पगडंडी पर मेरे पीछे रहना नहीं भूलती। किसी भी समय, कहीं भी जाने के लिए प्रस्तुत होते ही मैं भक्तिन को छाया के समान साथ पाती हूँ।

युद्ध को देश की सीमा में बढ़ते देख जब लोग आतंकित हो उठे, तब भक्तिन के बेटी-दामाद उसके नाती को लेकर बुलाने आ पहुँचे; पर बहुत समझाने-बुझाने पर भी वह उनके साथ नहीं जा सकी। सबको वह देख आती है; रुपया भेज देती है; पर उनके साथ रहने के लिए मेरा साथ छोड़ना आवश्यक है; जो संभवत: भक्तिन को जीवन के अंत तक स्वीकार न होगा।

जब गत वर्ष युद्ध के भूत ने वीरता के स्थान में पलायन-वृत्ति जगा दी थी, तब भक्तिन पहली ही बार सेवक की विनीत मुद्रा के साथ मुझसे गाँव चलने का अनुरोध करने आई। वह लकड़ी रखने के मचान पर अपनी नयी धोती बिछाकर मेरे कपड़े रख देगी, दीवाल में कीलें गाड़कर और उन पर तख्ते रखकर मेरी किताबें सजा देगी, धान के पुआल का गोंदरा बनवाकर और उस पर अपना कंबल बिछाकर वह मेरे सोने का प्रबंध करेगी। मेरे रंग, स्याही आदि को नयी हँडियों में सँजोकर रख देगी और कागज़-पत्रों को छींके में यथाविधि एकत्र कर देगी।

'मेरे पास वहाँ जाकर रहने के लिए रुपया नहीं है, यह मैंने भक्तिन के प्रस्ताव को अवकाश न देने के लिए कहा था; पर उसके परिणाम ने मुझे विस्मित कर दिया। भक्तिन ने परम रहस्य का उद्‌घाटन करने की मुद्रा बना कर और पोपला मुँह मेरे कान के पास लाकर हौले-हौले बताया कि उसके पास पाँच बीसी और पाँच रुपया गड़ा रखा है। उसी से वह सब प्रबंध कर लेगी। फिर लड़ाई तो कुछ अमरौती खाकर आई नहीं है। जब सब ठीक हो जाएगा, तब यहीं लौट आएँगे। भक्तिन की कंजूसी के प्राण पूंजीभूत होते-होते पर्वताकार बन चुके थे; परंतु इस उदारता के डाइनामाइट ने क्षण भर में उन्हें उड़ा दिया। इतने थोड़े रुपये का कोई महत्त्व नहीं; परंतु रुपये के प्रति भक्तिन का अनुराग इतना प्रख्यात हो चुका है कि मेरे लिए उसका परित्याग मेरे महत्त्व की सीमा तक पहुँचा देता है।

भक्तिन और मेरे बीच में सेवक-स्वामी का संबंध है, यह कहना कठिन है; क्योंकि ऐसा कोई स्वामी नहीं हो सकता, जो इच्छा होने पर भी सेवक को अपनी सेवा से हटा न सके और ऐसा कोई सेवक भी नहीं सुना गया, जो स्वामी के चले जाने का आदेश पाकर अवज्ञा से हँस दे। भक्तिन को नौकर कहना उतना ही असंगत है, जितना अपने घर में बारी-बारी से आने-जाने वाले अँधेरे-उजाले और आँगन में फूलने वाले गुलाब और आम को सेवक मानना। वे जिस प्रकार एक अस्तित्व रखते हैं, जिसे सार्थकता देने के लिए ही हमें सुख-दुख देते हैं, उसी प्रकार भक्तिन का स्वतंत्र व्यक्तित्व अपने विकास के परिचय के लिए ही मेरे जीवन को घेरे हुए है।

© NCERT not to be republished

परिवार और परिस्थितियों के कारण स्वभाव में जो विषमताएँ उत्पन्न हो गई हैं, उनके भीतर से एक स्नेह और सहानुभूति की आभा फूटती रहती है, इसी से उसके संपर्क में आने वाले व्यक्ति उसमें जीवन की सहज मार्मिकता ही पाते हैं। छात्रावास की बालिकाओं में से कोई अपनी चाय बनवाने के लिए देहली पर बैठी रहती है, कोई बाहर खड़ी मेरे लिए बने नाश्ते को चखकर उसके स्वाद की विवेचना करती रहती है। मेरे बाहर निकलते ही सब चिड़ियों के समान उड़ जाती हैं और भीतर आते ही यथास्थान विराजमान हो जाती हैं। इन्हें आने में रुकावट न हो, संभवतः इसी से भक्तिन अपना दोनों जून का भोजन सवेरे ही बनाकर ऊपर के आले में रख देती है और खाते समय चौके का एक कोना धोकर पाक–छत के सनातन नियम से समझौता कर लेती है।

मेरे परिचितों और साहित्यिक बंधुओं से भी भक्तिन विशेष परिचित है; पर उनके प्रति भक्तिन के सम्मान की मात्रा, मेरे प्रति उनके सम्मान की मात्रा पर निर्भर है और सद्भाव उनके प्रति मेरे सद्भाव से निश्चित होता है। इस संबंध में भक्तिन की सहजबुद्धि विस्मित कर देने वाली है।

वह किसी को आकार–प्रकार और वेश–भूषा से स्मरण करती है और किसी को नाम के अपभ्रंश द्वारा । कवि और कविता के संबंध में उसका ज्ञान बढ़ा है; पर आदर–भाव नहीं। किसी के लंबे बाल और अस्त–व्यस्त वेश–भूषा देखकर वह कह उठती है– 'का ओहू कवित्त लिखे जानत हैं' और तुरंत ही उसकी अवज्ञा प्रकट हो जाती है–तब ऊ कुच्छौ करिहैं–धरिहैं ना–बस गली–गली गाउत–बजाउत फिरिहैं।

पर सबका दुख उसे प्रभावित कर सकता है। विद्यार्थी वर्ग में से कोई जब कारागार का अतिथि हो जाता है, तब उस समाचार को व्यथित भक्तिन बीता–बीता भरे लड़कन का जेहल–कलजुग रहा तौन रहा अब परलय होई जाई–उनकर माई का बड़े लाट तक लड़ै का चाहीं, कहकर दिन भर सबको परेशान करती है। बापू से लेकर साधारण व्यक्ति तब सबके प्रति भक्तिन की सहानुभूति एकरस मिलती है।

भक्तिन के संस्कार ऐसे हैं कि वह कारागार से वैसे ही डरती है, जैसे यमलोक से। ऊँची दीवार देखते ही, वह आँख मूँदकर बेहोश हो जाना चाहती है। उसकी यह कमज़ोरी इतनी प्रसिद्धि पा चुकी है कि लोग मेरे जेल जाने की संभावना बता–बताकर उसे चिढ़ाते रहते हैं। वह डरती नहीं, यह कहना असत्य होगा; पर डर से भी अधिक महत्त्व मेरे साथ का ठहरता है। चुपचाप मुझसे पूछने लगती है कि वह अपनी कै धोती साबुन से साफ़ कर ले, जिससे मुझे वहाँ उसके लिए लज्जित न होना पड़े । क्या–क्या सामान बाँध ले, जिससे मुझे वहाँ किसी प्रकार की असुविधा न हो सके। ऐसी यात्रा में किसी को किसी के साथ जाने का अधिकार नहीं, यह आश्वासन भक्तिन के लिए कोई मूल्य नहीं रखता। वह मेरे न जाने

© NCERT not to be republished

की कल्पना से इतनी प्रसन्न नहीं होती, जितनी अपने साथ न जा सकने की संभावना से अपमानित। भला ऐसा अंधेर हो सकता है। जहाँ मालिक वहाँ नौकर–मालिक को ले जाकर बंद कर देने में इतना अन्याय नहीं; पर नौकर को अकेले मुक्त छोड़ देने में पहाड़ के बराबर अन्याय है। ऐसा अन्याय होने पर भक्तिन को बड़े लाट तक लड़ना पड़ेगा। किसी की माई यदि बड़े लाट तक नहीं लड़ी, तो नहीं लड़ी; पर भक्तिन का तो बिना लड़े काम ही नहीं चल सकता।

ऐसे विषम प्रतिद्वंद्वियों की स्थिति कल्पना में भी दुर्लभ है।

मैं प्राय: सोचती हूँ कि जब ऐसा बुलावा आ पहुँचेगा, जिसमें न धोती साफ़ करने का अवकाश रहेगा, न सामान बाँधने का, न भक्तिन को रुकने का अधिकार होगा, न मुझे रोकने का, तब चिर विदा के अंतिम क्षणों में यह देहातिन वृद्धा क्या करेगी और मैं क्या करूँगी?

भक्तिन की कहानी अधूरी है; पर उसे खोकर मैं इसे पूरी नहीं करना चाहती।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. भक्तिन अपना वास्तविक नाम लोगों से क्यों छुपाती थी? भक्तिन को यह नाम किसने और क्यों दिया होगा?
2. दो कन्या-रत्न पैदा करने पर भक्तिन पुत्र-महिमा में अंधी अपनी जिठानियों द्वारा घृणा व उपेक्षा का शिकार बनी। ऐसी घटनाओं से ही अकसर यह धारणा चलती है कि स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है। क्या इससे आप सहमत हैं?
3. भक्तिन की बेटी पर पंचायत द्वारा ज़बरन पति थोपा जाना एक दुर्घटना भर नहीं, बल्कि विवाह के संदर्भ में स्त्री के मानवाधिकार (विवाह करें या न करें अथवा किससे करें) इसकी स्वतंत्रता को कुचलते रहने की सदियों से चली आ रही सामाजिक परंपरा का प्रतीक है। कैसे?
4. ***भक्तिन अच्छी है, यह कहना कठिन होगा, क्योंकि उसमें दुर्गुणों का अभाव नहीं*** लेखिका ने ऐसा क्यों कहा होगा?
5. भक्तिन द्वारा शास्त्र के प्रश्न को सुविधा से सुलझा लेने का क्या उदाहरण लेखिका ने दिया है?
6. भक्तिन के आ जाने से महादेवी अधिक देहाती कैसे हो गईं?

पाठ के आसपास

1. ***आलो आँधारि*** की नायिका और लेखिका ***बेबी हालदार*** और ***भक्तिन*** के व्यक्तित्व में आप क्या समानता देखते हैं?

3. भक्तिन की बेटी के मामले में जिस तरह का फ़ैसला पंचायत ने सुनाया, वह आज भी कोई हैरतअंगेज़ बात नहीं है। अखबारों या टी. वी. समाचारों में आनेवाली किसी ऐसी ही घटना को ***भक्तिन*** के उस प्रसंग के साथ रखकर उस पर चर्चा करें।
4. पाँच वर्ष की वय में ब्याही जानेवाली लड़कियों में सिर्फ़ ***भक्तिन*** नहीं है, बल्कि आज भी हज़ारों अभागिनियाँ हैं। बाल-विवाह और उम्र के अनमेलपन वाले विवाह की अपने आस-पास हो रही घटनाओं पर दोस्तों के साथ परिचर्चा करें।
5. महादेवी जी इस पाठ में हिरनी सोना, कुत्ता बसंत, बिल्ली गोधूलि आदि के माध्यम से पशु-पक्षी को मानवीय संवेदना से उकेरने वाली लेखिका के रूप में उभरती हैं। उन्होंने अपने घर में और भी कई पशु-पक्षी पाल रखे थे तथा उन पर रेखाचित्र भी लिखे हैं। शिक्षक की सहायता से उन्हें ढूँढ़कर पढ़ें। जो **मेरा परिवार** नाम से प्रकाशित है।

भाषा की बात

1. नीचे दिए गए विशिष्ट भाषा-प्रयोगों के उदाहरणों को ध्यान से पढ़िए और इनकी अर्थ-छवि स्पष्ट कीजिए-

   (क) पहली कन्या के दो संस्करण और कर डाले

   (ख) खोटे सिक्कों की टकसाल जैसी पत्नी

   (ग) अस्पष्ट पुनरावृत्तियाँ और स्पष्ट सहानुभूतिपूर्ण
2. 'बहनोई' शब्द 'बहन (स्त्री.)+ओई' से बना है। इस शब्द में हिंदी भाषा की एक अनन्य विशेषता प्रकट हुई है। पुंलिंग शब्दों में कुछ स्त्री-प्रत्यय जोड़ने से स्त्रीलिंग शब्द बनने की एक समान प्रक्रिया कई भाषाओं में दिखती है, पर स्त्रीलिंग शब्द में कुछ पुं. प्रत्यय जोड़कर पुंलिंग शब्द बनाने की घटना प्राय: अन्य भाषाओं में दिखलाई नहीं पड़ती। यहाँ पुं. प्रत्यय 'ओई' हिंदी की अपनी विशेषता है। ऐसे कुछ और शब्द और उनमें लगे पुं. प्रत्ययों की हिंदी तथा और भाषाओं में खोज करें।
3. पाठ में आए लोकभाषा के इन संवादों को समझ कर इन्हें खड़ी बोली हिंदी में ढाल कर प्रस्तुत कीजिए।

   (क) *ई कउन बड़ी बात आय। रोटी बनाय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छँउक सकित है, अउर बाकी का रहा।*

   (ख) *हमारे मालकिन तौ रात-दिन कितबियन माँ गड़ी रहती हैं। अब हमहूँ पढ़ै लागब तो घर-गिरिस्ती कउन देखी-सुनी।*

   (ग) *ऊ बिचरिअउ तौ रात-दिन काम माँ झुकी रहती हैं, अउर तुम पचै घूमती-फिरती हौ, चलौ तनिक हाथ बटाय लेउ।*

   (घ) *तब ऊ कुच्छौ करिहैं-धरिहैं ना-बस गली-गली गाउत-बजाउत फिरिहैं।*

   (ङ) *तुम पचै का का बताईयहै पचास बरिस से संग रहित है।*

© NCERT not to be republished

(च) *हम कुकुरी बिलारी न होयँ, हमार मन पुसाई तौ हम दूसरा के जाब नाहिं त तुम्हार पचै की छाती पै होरहा भूँजब और राज करब, समुझे रहौ।*

4. ***भक्तिन*** पाठ में ***पहली कन्या के दो संस्करण*** जैसे प्रयोग लेखिका के खास भाषाई संस्कार की पहचान कराता है, साथ ही ये प्रयोग कथ्य को संप्रेषणीय बनाने में भी मददगार हैं। वर्तमान हिंदी में भी कुछ अन्य प्रकार की शब्दावली समाहित हुई है। नीचे कुछ वाक्य दिए जा रहे हैं जिससे वक्ता की खास पसंद का पता चलता है। आप वाक्य पढ़कर बताएँ कि इनमें किन तीन विशेष प्रकार की शब्दावली का प्रयोग हुआ है? इन शब्दावलियों या इनके अतिरिक्त अन्य किन्हीं विशेष शब्दावलियों का प्रयोग करते हुए आप भी कुछ वाक्य बनाएँ और कक्षा में चर्चा करें कि ऐसे प्रयोग भाषा की समृद्धि में कहाँ तक सहायक है?
   – ***अरे! उससे सावधान रहना! वह नीचे से ऊपर तक वायरस से भरा हुआ है। जिस सिस्टम में जाता है उसे हैंग कर देता है।***
   – ***घबरा मत! मेरी इनस्वींगर के सामने उसके सारे वायरस घुटने टेकेंगे। अगर ज़्यादा फ़ाउल मारा तो रेड कार्ड दिखा के हमेशा के लिए पवेलियन भेज दूँगा।***
   – ***जानी टेंसन नई लेने का वो जिस स्कूल में पढ़ता है अपुन उसका हैडमास्टर है।***

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

तुम पचै – तुम लोगों से
दुर्वह – जिसे ढोना कठिन हो
अलगौझा – बँटवारा
नैहर – मायका
विधात्री – जन्म देने वाली माँ
पुरखिन – बुज़ुर्ग महिला
राब – गन्ने का पका हुआ गाढ़ा रस
दुर्लंघ्य – जिसे पार करना कठिन हो
कुंचित – सिकुड़ी हुई
तुषारपात – ओले बरसाना
हतबुद्धि – जिसकी बुद्धि या विचारने की शक्ति मारी गयी हो।
होरहा – हरे अनाजों का आग पर भुना रूप
झूँसी – गंगा के तट पर (इलाहाबाद के पास) का स्थान, जहाँ प्राचीन काल में प्रतिष्ठानपुरी नाम की नगरी बसी हुई थी।
भइउहू – छोटे भाई की पत्नी
जिठौत – जेठ का पुत्र
अजिया ससुर – पति का दादा

12070CH12

जैनेंद्र कुमार 12

***जन्म** : सन् 1905, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश)*
***प्रमुख रचनाएँ** : परख, अनाम स्वामी, सुनीता, त्यागपत्र, कल्याणी, जयवर्द्धन, मुक्तिबोध (उपन्यास); वातायन, एक रात, दो चिड़िया, फाँसी, नीलम देश की राजकन्या, पाज़ेब (कहानी-संग्रह); प्रस्तुत प्रश्न, जड़ की बात, पूर्वोदय, साहित्य का श्रेय और प्रेय, सोच-विचार, समय और हम (विचार-प्रधान निबंध-संग्रह)*
***प्रमुख पुरस्कार** : साहित्य अकादेमी पुरस्कार, भारत-भारती सम्मान। भारत सरकार द्वारा **पद्मभूषण** से सम्मानित*
***निधन** : सन् 1990 में*

यथार्थ को अंतिम सत्य के रूप में ओढ़कर जो अपने को विवश मान बैठ सकता है, वही तो असमर्थ है। पर जिसने स्वप्न के सत्य के दर्शन किए वह यथार्थ की विकटता से कैसे निरुत्साहित हो सकता है?

*हिंदी में प्रेमचंद के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित जैनेंद्र कुमार का अवदान बहुत व्यापक और वैविध्यपूर्ण है। अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से उन्होंने हिंदी में एक सशक्त मनोवैज्ञानिक कथा-धारा का प्रवर्तन किया। **परख** और **सुनीता** के बाद 1937 में प्रकाशित **त्यागपत्र** ने इन्हें मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में प्रभूत प्रतिष्ठा दिलाई। इसी तरह **खेल, पाज़ेब, नीलम देश की राजकन्या, अपना-अपना भाग्य, तत्सत** जैसी कहानियों को भी कालजयी रचनाओं के रूप में मान्यता मिली है।*

कथाकार होने के साथ-साथ जैनेंद्र की पहचान अत्यंत गंभीर चिंतक के रूप में रही। बहुत सरल एवं अनौपचारिक-सी दिखनेवाली शैली में उन्होंने समाज, राजनीति, अर्थनीति एवं दर्शन से संबंधित गहन प्रश्नों को सुलझाने की कोशिश की है। अपनी गांधीवादी चिंतन-दृष्टि का जितना सुष्ठु एवं सहज उपयोग वे जीवन-जगत से जुड़े प्रश्नों के संदर्भ में करते हैं, वह

© NCERT not to be republished

अन्यत्र दुर्लभ है और वह इस बात का सबूत पेश करता है कि गांधीवाद को उन्होंने कितनी गहराई से हृदयंगम किया है।

बाज़ार दर्शन *जैनेंद्र का एक महत्त्वपूर्ण निबंध है, जिसमें गहरी वैचारिकता और साहित्य सुलभ लालित्य का दुर्लभ संयोग देखा जा सकता है। हिंदी में उपभोक्तावाद एवं बाज़ारवाद पर व्यापक चर्चा पिछले एक-डेढ़ दशक पहले ही शुरू हुई है, पर कई दशक पहले लिखा गया जैनेंद्र का लेख आज भी इनकी मूल अंतर्वस्तु को समझाने के मामले में बेजोड़ है। वे अपने परिचितों, मित्रों से जुड़े अनुभव बताते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि बाज़ार की जादुई ताकत कैसे हमें अपना गुलाम बना लेती है। अगर हम अपनी आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझकर बाज़ार का उपयोग करें, तो उसका लाभ उठा सकते हैं। लेकिन अगर हम ज़रूरत को तय कर बाज़ार में जाने के बजाय उसकी चमक-दमक में फँस गए तो वह असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर हमें सदा के लिए बेकार बना सकता है। इस मूलभाव को जैनेंद्र कुमार ने भाँति-भाँति से समझाने की कोशिश की है। कहीं दार्शनिक अंदाज़ में, तो कहीं किस्सागो की तरह। इसी क्रम में केवल बाज़ार का पोषण करने वाले अर्थशास्त्र को उन्होंने अनीतिशास्त्र बताया है।*

© NCERT not to be republished

बाज़ार दर्शन

एक बार की बात कहता हूँ। मित्र बाज़ार गए तो थे कोई एक मामूली चीज़ लेने पर लौटे तो एकदम बहुत-से बंडल पास थे।

मैंने कहा—यह क्या?

बोले—यह जो साथ थीं।

उनका आशय था कि यह पत्नी की महिमा है। उस महिमा का मैं कायल हूँ। आदिकाल से इस विषय में पति से पत्नी की ही प्रमुखता प्रमाणित है। और यह व्यक्तित्व का प्रश्न नहीं, स्त्रीत्व का प्रश्न है। स्त्री माया न जोड़े, तो क्या मैं जोड़ूँ? फिर भी सच सच है और वह यह कि इस बात में पत्नी की ओट ली जाती है। मूल में एक और तत्त्व की महिमा सविशेष है। वह तत्त्व है मनीबैग, अर्थात पैसे की गरमी या एनर्जी।

पैसा पावर है। पर उसके सबूत में आस-पास माल-टाल न जमा हो तो क्या वह खाक पावर है! पैसे को देखने के लिए बैंक-हिसाब देखिए, पर माल-असबाब मकान-कोठी तो अनदेखे भी दीखते हैं। पैसे की उस 'पर्चेज़िंग पावर' के प्रयोग में ही पावर का रस है।

लेकिन नहीं। लोग संयमी भी होते हैं। वे फ़िज़ूल सामान को फ़िज़ूल समझते हैं। वे पैसा बहाते नहीं हैं और बुद्धिमान होते हैं। बुद्धि और संयमपूर्वक वह पैसे को जोड़ते जाते हैं, जोड़ते जाते हैं। वह पैसे की पावर को इतना निश्चय समझते हैं कि उसके प्रयोग की परीक्षा उन्हें दरकार नहीं है। बस खुद पैसे के जुड़ा होने पर उनका मन गर्व से भरा फूला रहता है।

मैंने कहा—यह कितना सामान ले आए!

मित्र ने सामने मनीबैग फैला दिया, कहा—यह देखिए। सब उड़ गया, अब जो रेल-टिकट के लिए भी बचा हो!

मैंने तब तय माना कि और पैसा होता और सामान आता। वह सामान ज़रूरत की तरफ़ देखकर नहीं आया, अपनी 'पर्चेज़िंग पावर' के अनुपात में आया है।

लेकिन ठहरिए। इस सिलसिले में एक और भी महत्त्व का तत्त्व है, जिसे नहीं भूलना चाहिए। उसका भी इस करतब में बहुत-कुछ हाथ है। वह महत्त्व है, बाज़ार।

मैंने कहा—यह इतना कुछ नाहक ले आए!

मित्र बोले—कुछ न पूछो। बाज़ार है कि शैतान का जाल है? ऐसा सजा-सजाकर माल रखते हैं कि बेहया ही हो जो न फँसे।

मैंने मन में कहा, ठीक। बाज़ार आमंत्रित करता है कि आओ मुझे लूटो और लूटो। सब भूल जाओ, मुझे देखो। मेरा रूप और किसके लिए है? मैं तुम्हारे लिए हूँ। नहीं कुछ चाहते हो, तो भी देखने में क्या हरज़ है। अजी आओ भी। इस आमंत्रण में यह खूबी है कि आग्रह नहीं है आग्रह तिरस्कार जगाता है। लेकिन ऊँचे बाज़ार का आमंत्रण मूक होता है और उससे चाह जगती है। चाह मतलब अभाव। चौक बाज़ार में खड़े होकर आदमी को लगने लगता है कि उसके अपने पास काफ़ी नहीं है और चाहिए, और चाहिए। मेरे यहाँ कितना परिमित है और यहाँ कितना अतुलित है ओह!

कोई अपने को न जाने तो बाज़ार का यह चौक उसे कामना से विकल बना छोड़े। विकल क्यों, पागल। असंतोष, तृष्णा और ईर्ष्या से घायल कर मनुष्य को सदा के लिए यह बेकार बना डाल सकता है।

एक और मित्र की बात है। यह दोपहर के पहले के गए-गए बाज़ार से कहीं शाम को वापिस आए। आए तो खाली हाथ!

© NCERT not to be republished

मैंने पूछा—कहाँ रहे?

बोले—बाज़ार देखते रहे।

मैंने कहा—बाज़ार को देखते क्या रहे?

बोले—क्यों? बाज़ार!

तब मैंने कहा—लाए तो कुछ नहीं!

बोले—हाँ पर यह समझ न आता था कि न लूँ तो क्या? सभी कुछ तो लेने को जी होता था। कुछ लेने का मतलब था शेष सब-कुछ को छोड़ देना। पर मैं कुछ भी नहीं छोड़ना चाहता था। इससे मैं कुछ भी नहीं ले सका।

मैंने कहा—खूब!

पर मित्र की बात ठीक थी। अगर ठीक पता नहीं है कि क्या चाहते हो तो सब ओर की चाह तुम्हें घेर लेगी। और तब परिणाम त्रास ही होगा, गति नहीं होगी, न कर्म।

बाज़ार में एक जादू है। वह जादू आँख की राह काम करता है। वह रूप का जादू है पर जैसे चुंबक का जादू लोहे पर ही चलता है, वैसे ही इस जादू की भी मर्यादा है। जेब भरी हो, और मन खाली हो, ऐसी हालत में जादू का असर खूब होता है। जेब खाली पर मन भरा न हो, तो भी जादू चल जाएगा। मन खाली है तो बाज़ार की अनेकानेक चीज़ों का निमंत्रण उस तक पहुँच जाएगा। कहीं हुई उस वक्त जेब भरी तब तो फिर वह मन किसकी मानने वाला है! मालूम होता है यह भी लूँ, वह भी लूँ। सभी सामान ज़रूरी और आराम को बढ़ाने वाला मालूम होता है। पर यह सब जादू का असर है। जादू की सवारी उतरी कि पता चलता है कि फ़ैंसी चीज़ों की बहुतायत आराम में मदद नहीं देती, बल्कि खलल ही डालती है। थोड़ी देर को स्वाभिमान को ज़रूर सेंक मिल जाता है पर इससे अभिमान की गिल्टी की और खुराक ही मिलती है। जकड़ रेशमी डोरी की हो तो रेशम के स्पर्श के मुलायम के कारण क्या वह कम जकड़ होगी?

पर उस जादू की जकड़ से बचने का एक सीधा-सा उपाय है। वह यह कि बाज़ार जाओ तो खाली मन न हो। मन खाली हो, तब बाज़ार न जाओ। कहते हैं लू में जाना हो तो पानी पीकर जाना चाहिए। पानी भीतर हो, लू का लूपन व्यर्थ हो जाता है। मन लक्ष्य में भरा हो तो बाज़ार भी फैला-का-फैला ही रह जाएगा। तब वह घाव बिलकुल नहीं दे सकेगा, बल्कि कुछ आनंद ही देगा। तब बाज़ार तुमसे कृतार्थ होगा, क्योंकि तुम कुछ-न-कुछ सच्चा लाभ उसे दोगे। बाज़ार की असली कृतार्थता है आवश्यकता के समय काम आना।

यहाँ एक अंतर चीन्ह लेना बहुत ज़रूरी है। मन खाली नहीं रहना चाहिए, इसका मतलब यह नहीं है कि वह मन बंद रहना चाहिए। जो बंद हो जाएगा, वह शून्य हो जाएगा। शून्य

© NCERT not to be republished

होने का अधिकार बस परमात्मा का है जो सनातन भाव से संपूर्ण है। शेष सब अपूर्ण है। इससे मन बंद नहीं रह सकता। सब इच्छाओं का निरोध कर लोगे, यह झूठ है और अगर 'इच्छानिरोधस्तप:' का ऐसा ही नकारात्मक अर्थ हो तो वह तप झूठ है। वैसे तप की राह रेगिस्तान को जाती होगी, मोक्ष की राह वह नहीं है। ठाठ देकर मन को बंद कर रखना जड़ता है। लोभ का यह जीतना नहीं है कि जहाँ लोभ होता है, यानी मन में, वहाँ नकार हो! यह तो लोभ की ही जीत है और आदमी की हार। आँख अपनी फोड़ डाली, तब लोभनीय के दर्शन से बचे तो क्या हुआ? ऐसे क्या लोभ मिट जाएगा? और कौन कहता है कि आँख फूटने पर रूप दीखना बंद हो जाएगा? क्या आँख बंद करके ही हम सपने नहीं लेते हैं? और वे सपने क्या चैन-भंग नहीं करते हैं? इससे मन को बंद कर डालने की कोशिश तो अच्छी नहीं। वह अकारथ है यह तो हठवाला योग है। शायद हठ-ही-हठ है, योग नहीं है। इससे मन कृश भले हो जाए और पीला और अशक्त जैसे विद्वान का ज्ञान। वह मुक्त ऐसे नहीं होता। इससे वह व्यापक की जगह संकीर्ण और विराट की जगह क्षुद्र होता है। इसलिए उसका रोम-रोम मूँदकर बंद तो मन को करना नहीं चाहिए। वह मन पूर्ण कब है? हम में पूर्णता होती तो परमात्मा से अभिन्न हम महाशून्य ही न होते? अपूर्ण हैं, इसी से हम हैं। सच्चा ज्ञान सदा इसी अपूर्णता के बोध को हम में गहरा करता है। सच्चा कर्म सदा इस अपूर्णता की स्वीकृति के साथ होता है। अत: उपाय कोई वही हो सकता है जो बलात् मन को रोकने को न कहे, जो मन को भी इसलिए सुने क्योंकि वह अप्रयोजनीय रूप में हमें नहीं प्राप्त हुआ है। हाँ, मनमानेपन की छूट मन को न हो, क्योंकि वह अखिल का अंग है, खुद कुल नहीं है।

पड़ोस में एक महानुभाव रहते हैं जिनको लोग भगत जी कहते हैं। चूरन बेचते हैं। यह काम करते, जाने उन्हें कितने बरस हो गए हैं। लेकिन किसी एक भी दिन चूरन से उन्होंने छ: आने पैसे से ज़्यादा नहीं कमाए। चूरन उनका आस-पास सरनाम है। और खुद खूब लोकप्रिय हैं। कहीं व्यवसाय का गुर पकड़ लेते और उस पर चलते तो आज खुशहाल क्या मालामाल होते! क्या कुछ उनके पास न होता! इधर दस वर्षों से मैं देख रहा हूँ, उनका चूरन हाथों-हाथ बिक जाता है। पर वह न उसे थोक देते हैं, न व्यापारियों को बेचते हैं। पेशगी आर्डर कोई नहीं लेते। बँधे वक्त पर अपनी चूरन की पेटी लेकर घर से बाहर हुए नहीं कि देखते-देखते छह आने की कमाई उनकी हो जाती है। लोग उनका चूरन लेने को उत्सुक जो रहते हैं। चूरन से भी अधिक शायद वह भगत जी के प्रति अपनी सद्‌भावना का देय देने को उत्सुक रहते हैं। पर छह आने पूरे हुए नहीं कि भगतजी बाकी चूरन बालकों को मुफ़्त बाँट देते हैं। कभी ऐसा नहीं हुआ है कि कोई उन्हें पच्चीसवाँ पैसा भी दे सके। कभी चूरन में लापरवाही नहीं हुई है, और कभी रोग होता भी मैंने उन्हें नहीं देखा है।

© NCERT not to be republished

और तो नहीं, लेकिन इतना मुझे निश्चय मालूम होता है कि इन चूरनवाले भगत जी पर बाज़ार का जादू नहीं चल सकता।

कहीं आप भूल न कर बैठिएगा। इन पंक्तियों को लिखने वाला मैं चूरन नहीं बेचता हूँ। जी नहीं, ऐसी हलकी बात भी न सोचिएगा। यह समझिएगा कि लेख के किसी भी मान्य पाठक से उस चूरन वाले को श्रेष्ठ बताने की मैं हिम्मत कर सकता हूँ। क्या जाने उस भोले आदमी को अक्षर-ज्ञान तक भी है या नहीं । और बड़ी बातें तो उसे मालूम क्या होंगी। और हम-आप न जाने कितनी बड़ी-बड़ी बातें जानते हैं। इससे यह तो हो सकता है कि वह चूरन वाला भगत हम लोगों के सामने एकदम नाचीज़ आदमी हो। लेकिन आप पाठकों की विद्वान श्रेणी का सदस्य होकर भी मैं यह स्वीकार नहीं करना चाहता हूँ कि उस अपदार्थ प्राणी को वह प्राप्त है जो हम में से बहुत कम को शायद प्राप्त है। उस पर बाज़ार का जादू वार नहीं कर पाता। माल बिछा रहता है, और उसका मन अडिग रहता है। पैसा उससे आगे होकर भीख तक माँगता है कि मुझे लो। लेकिन उसके मन में पैसे पर दया नहीं समाती। वह निर्मम व्यक्ति पैसे को अपने आहत गर्व में बिलखता ही छोड़ देता है। ऐसे आदमी के आगे क्या पैसे की व्यंग्य-शक्ति कुछ भी चलती होगी? क्या वह शक्ति कुंठित रहकर सलज्ज ही न हो जाती होगी?

पैसे की व्यंग्य-शक्ति की सुनिए। वह दारुण है। मैं पैदल चल रहा हूँ कि पास ही धूल उड़ाती निकल गई मोटर। वह क्या निकली मेरे कलेजे को कौंधती एक कठिन व्यंग्य की लीक ही आर-से-पार हो गई। जैसे किसी ने आँखों में उँगली देकर दिखा दिया हो कि देखो, उसका नाम है मोटर, और तुम उससे वंचित हो! यह मुझे अपनी ऐसी विडंबना मालूम होती है कि बस पूछिए नहीं। मैं सोचने को हो आता हूँ कि हाय, ये ही माँ-बाप रह गए थे जिनके यहाँ मैं जन्म लेने को था! क्यों न मैं मोटरवालों के यहाँ हुआ! उस व्यंग्य में इतनी शक्ति है कि ज़रा में मुझे अपने सगों के प्रति कृतघ्न कर सकती है।

लेकिन क्या लोकवैभव की यह व्यंग्य-शक्ति उस चूरन वाले अकिंचित्कर मनुष्य के आगे चूर-चूर होकर ही नहीं रह जाती? चूर-चूर क्यों, कहो पानी-पानी।

तो वह क्या बल है जो इस तीखे व्यंग्य के आगे ही अजेय ही नहीं रहता, बल्कि मानो उस व्यंग्य की क्रूरता को ही पिघला देता है?

उस बल को नाम जो दो; पर वह निश्चय उस तल की वस्तु नहीं है जहाँ पर संसारी वैभव फलता-फूलता है। वह कुछ अपर जाति का तत्त्व है। लोग स्पिरिचुअल कहते हैं; आत्मिक, धार्मिक, नैतिक कहते हैं। मुझे योग्यता नहीं कि मैं उन शब्दों में अंतर देखूँ और प्रतिपादन करूँ। मुझे शब्द से सरोकार नहीं। मैं विद्वान नहीं कि शब्दों पर अटकूँ। लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है, वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाए तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा

और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की ओर झुकता है। वह अबलता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है।

एक बार चूरन वाले भगत जी बाज़ार चौक में दीख गए। मुझे देखते ही उन्होंने जय-जयराम किया। मैंने भी जयराम कहा। उनकी आँखें बंद नहीं थीं और न उस समय वह बाज़ार को किसी भाँति कोस रहे मालूम होते थे। राह में बहुत लोग, बहुत बालक मिले जो भगत जी द्वारा पहचाने जाने के इच्छुक थे। भगत जी ने सबको ही हँसकर पहचाना। सबका अभिवादन लिया और सबको अभिवादन किया। इससे तनिक भी यह नहीं कहा जा सकेगा कि चौक-बाज़ार में होकर उनकी आँखें किसी से भी कम खुली थीं। लेकिन भौंचक्के हो रहने की लाचारी उन्हें नहीं थी। व्यवहार में पसोपेश उन्हें नहीं था और खोए-से खड़े नहीं वह रह जाते थे। भाँति-भाँति के बढ़िया माल से चौक भरा पड़ा है। उस सबके प्रति अप्रीति इस भगत के मन में नहीं है। जैसे उस समूचे माल के प्रति भी उनके मन में आशीर्वाद हो सकता है। विद्रोह नहीं, प्रसन्नता ही भीतर है, क्योंकि कोई रिक्त भीतर नहीं है। देखता हूँ कि खुली आँख, तुष्ट और मग्न, वह चौक-बाज़ार में से चलते चले जाते हैं। राह में बड़े-बड़े फैंसी स्टोर पड़ते हैं, पर पड़े रह जाते हैं। कहीं भगत नहीं रुकते । रुकते हैं तो एक छोटी पंसारी की दुकान पर रुकते हैं। वहाँ दो-चार अपने काम की चीज़ लीं, और चले आते हैं। बाज़ार से हठपूर्वक विमुखता उनमें नहीं है; लेकिन अगर उन्हें जीरा और काला नमक चाहिए तो सारे चौक-बाज़ार की सत्ता उनके लिए तभी तक है, तभी तक उपयोगी है, जब तक वहाँ जीरा मिलता है। ज़रूरत-भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है। वह जानते हैं कि जो उन्हें चाहिए वह है जीरा नमक। बस इस निश्चित प्रतीति के बल पर शेष सब चाँदनी चौक का आमंत्रण उन पर व्यर्थ होकर बिखरा रहता है। चौक की चाँदनी दाएँ-बाएँ भूखी-की-भूखी फैली रह जाती है; क्योंकि भगत जी को जीरा चाहिए वह तो कोने वाली पंसारी की दुकान से मिल जाता है और वहाँ से सहज भाव में ले लिया गया है। इसके आगे आस-पास अगर चाँदनी बिछी रहती है तो बड़ी खुशी से बिछी रहे, भगत जी से बेचारी का कल्याण ही चाहते हैं।

यहाँ मुझे ज्ञात होता है कि बाज़ार को सार्थकता भी वही मनुष्य देता है जो जानता है कि वह क्या चाहता है। और जो नहीं जानते कि वे क्या चाहते हैं, अपनी 'पर्चेजिंग पावर' के गर्व में अपने पैसे से केवल एक विनाशक शक्ति–शैतानी शक्ति, व्यंग्य की शक्ति ही बाज़ार को देते हैं। न तो वे बाज़ार से लाभ उठा सकते हैं, न उस बाज़ार को सच्चा लाभ दे सकते हैं। वे लोग बाज़ार का बाज़ारूपन बढ़ाते हैं। जिसका मतलब है कि कपट बढ़ाते हैं। कपट की बढ़ती का अर्थ परस्पर में सद्भाव की घटी। इस सद्भाव के ह्रास पर आदमी आपस में भाई-भाई और सुहृद और पड़ोसी फिर रह ही नहीं जाते हैं और आपस में कोरे

© NCERT not to be republished

गाहक और बेचक की तरह व्यवहार करते हैं। मानो दोनों एक-दूसरे को ठगने की घात में हों। एक की हानि में दूसरे का अपना लाभ दीखता है और यह बाज़ार का, बल्कि इतिहास का; सत्य माना जाता है ऐसे बाज़ार को बीच में लेकर लोगों में आवश्यकताओं का आदान-प्रदान नहीं होता; बल्कि शोषण होने लगता है तब कपट सफल होता है, निष्कपट शिकार होता है। ऐसे बाज़ार मानवता के लिए विडंबना हैं और जो ऐसे बाज़ार का पोषण करता है, जो उसका शास्त्र बना हुआ है; वह अर्थशास्त्र सरासर औंधा है वह मायावी शास्त्र है वह अर्थशास्त्र अनीति-शास्त्र है।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. बाज़ार का जादू चढ़ने और उतरने पर मनुष्य पर क्या-क्या असर पड़ता है?
2. बाज़ार में भगत जी के व्यक्तित्व का कौन-सा सशक्त पहलू उभरकर आता है? क्या आपकी नज़र में उनका आचरण समाज में शांति-स्थापित करने में मददगार हो सकता है?
3. 'बाज़ारूपन' से क्या तात्पर्य है? किस प्रकार के व्यक्ति बाज़ार को सार्थकता प्रदान करते हैं अथवा बाज़ार की सार्थकता किसमें है?
4. बाज़ार किसी का लिंग, जाति, धर्म या क्षेत्र नहीं देखता; वह देखता है सिर्फ़ उसकी क्रय शक्ति को। इस रूप में वह एक प्रकार से सामाजिक समता की भी रचना कर रहा है। आप इससे कहाँ तक सहमत हैं?
5. आप अपने तथा समाज से कुछ ऐसे प्रसंग का उल्लेख करें–
   (क) जब पैसा शक्ति के परिचायक के रूप में प्रतीत हुआ।
   (ख) जब पैसे की शक्ति काम नहीं आई।

पाठ के आसपास

1. **बाज़ार दर्शन** पाठ में बाज़ार जाने या न जाने के संदर्भ में मन की कई स्थितियों का ज़िक्र आया है। आप इन स्थितियों से जुड़े अपने अनुभवों का वर्णन कीजिए।
   (क) मन खाली हो (ख) मन खाली न हो
   (ग) मन बंद हो (घ) मन में नकार हो
2. बाज़ार दर्शन पाठ में किस प्रकार के ग्राहकों की बात हुई है? आप स्वयं को किस श्रेणी का ग्राहक मानते/मानती हैं?
3. आप बाज़ार की भिन्न-भिन्न प्रकार की संस्कृति से अवश्य परिचित होंगे। मॉल की संस्कृति और सामान्य बाज़ार और हाट की संस्कृति में आप क्या अंतर पाते हैं? **पर्चेज़िंग पावर** आपको किस तरह के बाज़ार में नज़र आती है?

© NCERT not to be republished

4. लेखक ने पाठ में संकेत किया है कि कभी-कभी बाज़ार में आवश्यकता ही शोषण का रूप धारण कर लेती है। क्या आप इस विचार से सहमत हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
5. **स्त्री माया न जोड़े** यहाँ **माया** शब्द किस ओर संकेत कर रहा है? स्त्रियों द्वारा माया जोड़ना प्रकृति प्रदत्त नहीं, बल्कि परिस्थितिवश है। वे कौन-सी परिस्थितियाँ हैं जो स्त्री को माया जोड़ने के लिए विवश कर देती हैं?

आपसदारी

1. **ज़रूरत-भर जीरा वहाँ से ले लिया कि फिर सारा चौक उनके लिए आसानी से नहीं के बराबर हो जाता है**– भगत जी की इस संतुष्ट निस्पृहता की कबीर की इस सूक्ति से तुलना कीजिए–

> चाह गई चिंता गई मनुआँ बेपरवाह
> जाके कछु न चाहिए सोइ सहंसाह।
> ***–कबीर***

2. विजयदान देथा की कहानी 'दुविधा' (जिस पर 'पहेली' फ़िल्म बनी है) के अंश को पढ़ कर आप देखेंगे/देखेंगी कि भगत जी की संतुष्ट जीवन-दृष्टि की तरह ही गड़रिए की जीवन-दृष्टि है, इससे आपके भीतर क्या भाव जगते हैं?

> गड़रिया बगैर कहे ही उस के दिल की बात समझ गया, पर अँगूठी कबूल नहीं की। काली दाढ़ी के बीच पीले दाँतों की हँसी हँसते हुए बोला– 'मैं कोई राजा नहीं हूँ जो न्याय की कीमत वसूल करूँ। मैंने तो अटका काम निकाल दिया। और यह अँगूठी मेरे किस काम की! न यह अँगुलियों में आती है, न तड़े में। मेरी भेड़ें भी मेरी तरह गँवार हैं। घास तो खाती हैं, पर सोना सूँघती तक नहीं। बेकार की वस्तुएँ तुम अमीरों को ही शोभा देती हैं।'
> ***–विजयदान देथा***

3. **बाज़ार** पर आधारित लेख **नकली सामान पर नकेल ज़रूरी** का अंश पढ़िए और नीचे दिए गए बिंदुओं पर कक्षा में चर्चा कीजिए।
   (क) नकली सामान के खिलाफ़ जागरूकता के लिए आप क्या कर सकते हैं?
   (ख) उपभोक्ताओं के हित को मद्देनज़र रखते हुए सामान बनाने वाली कंपनियों का क्या नैतिक दायित्व हैं?
   (ग) ब्रांडेड वस्तु को खरीदने के पीछे छिपी मानसिकता को उजागर कीजिए?

© NCERT not to be republished

नकली सामान पर नकेल ज़रूरी

अपना क्रेता वर्ग बढ़ाने की होड़ में एफएमसीजी यानी तेज़ी से बिकने वाले उपभोक्ता उत्पाद बनाने वाली कंपनियाँ गाँव के बाज़ारों में नकली सामान भी उतार रही हैं। कई उत्पाद ऐसे होते हैं जिन पर न तो निर्माण तिथि होती है और न ही उस तारीख का ज़िक्र होता है जिससे पता चले कि अमुक सामान के इस्तेमाल की अवधि समाप्त हो चुकी है। आउटडेटेड या पुराना पड़ चुका सामान भी गाँव-देहात के बाज़ारों में खप रहा है। ऐसा उपभोक्ता मामलों के जानकारों का मानना है। नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट्स रिड्रेसल कमीशन के सदस्य की मानें तो जागरूकता अभियान में तेज़ी लाए बगैर इस गोरखधंधे पर लगाम कसना नामुमकिन है।

उपभोक्ता मामलों की जानकार पुष्पा गिरि माँ जी का कहना है, 'इसमें दो राय नहीं कि गाँव-देहात के बाज़ारों में नकली सामान बिक रहा है। महानगरीय उपभोक्ताओं को अपने शिकंजे में कसकर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, खासकर ज़्यादा उत्पाद बेचने वाली कंपनियाँ, गाँव का रुख कर चुकी हैं। वे गाँववालों के अज्ञान और उनके बीच जागरूकता के अभाव का पूरा फ़ायदा उठा रही हैं। उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए कानून ज़रूर हैं लेकिन कितने लोग इनका सहारा लेते हैं यह बताने की ज़रूरत नहीं। गुणवत्ता के मामले में जब शहरी उपभोक्ता ही उतने सचेत नहीं हो पाए हैं तो गाँव वालों से कितनी उम्मीद की जा सकती है।

इस बारे में नेशनल कंज्यूमर डिस्प्यूट्स रिड्रेसल कमीशन के सदस्य जस्टिस एस. एन. कपूर का कहना है, 'टीवी ने दूर-दराज़ के गाँवों तक में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को पहुँचा दिया है। बड़ी-बड़ी कंपनियाँ विज्ञापन पर तो बेतहाशा पैसा खर्च करती हैं लेकिन उपभोक्ताओं में जागरूकता को लेकर वे चवन्नी खर्च करने को तैयार नहीं हैं। नकली सामान के खिलाफ़ जागरूकता पैदा करने में स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थी मिलकर ठोस काम कर सकते हैं। ऐसा कि कोई प्रशासक भी न कर पाए।'

बेशक, इस कड़वे सच को स्वीकार कर लेना चाहिए कि गुणवत्ता के प्रति जागरूकता के लिहाज़ से शहरी समाज भी कोई ज़्यादा सचेत नहीं है। यह खुली हुई बात है कि किसी बड़े ब्रांड का लोकल संस्करण शहर या महानगर का मध्य या निम्नमध्य वर्गीय उपभोक्ता भी खुशी-खुशी खरीदता है। यहाँ जागरूकता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि वह ऐसा सोच-समझकर और अपनी जेब की हैसियत को जानकर ही कर रहा है। फिर गाँववाला उपभोक्ता ऐसा क्योंकर न करे। पर फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि यदि समाज में कोई गलत काम हो रहा है तो उसे रोकने के जतन न किए जाएँ। यानी नकली सामान के इस गोरखधंधे पर विराम लगाने के लिए जो कदम या अभियान शुरू करने की ज़रूरत है वह तत्काल हो।

–हिंदुस्तान 6 अगस्त 2006, साभार

© NCERT not to be republished

4. प्रेमचंद की कहानी ***ईदगाह*** के हामिद और उसके दोस्तों का बाज़ार से क्या संबंध बनता है? विचार करें।

विज्ञापन की दुनिया

1. आपने समाचारपत्रों, टी.वी. आदि पर अनेक प्रकार के विज्ञापन देखे होंगे जिनमें ग्राहकों को हर तरीके से लुभाने का प्रयास किया जाता है। नीचे लिखे बिंदुओं के संदर्भ में किसी एक विज्ञापन की समीक्षा कीजिए और यह भी लिखिए कि आपको विज्ञापन की किस बात ने सामान खरीदने के लिए प्रेरित किया।
    1. विज्ञापन में सम्मिलित चित्र और विषय-वस्तु
    2. विज्ञापन में आए पात्र व उनका औचित्य
    3. विज्ञापन की भाषा
2. अपने सामान की बिक्री को बढ़ाने के लिए आज किन-किन तरीकों का प्रयोग किया जा रहा है? उदाहरण सहित उनका संक्षिप्त परिचय दीजिए। आप स्वयं किस तकनीक या तौर-तरीके का प्रयोग करना चाहेंगे जिससे बिक्री भी अच्छी हो और उपभोक्ता गुमराह भी न हो।

भाषा की बात

1. विभिन्न परिस्थितियों में भाषा का प्रयोग भी अपना रूप बदलता रहता है कभी औपचारिक रूप में आती है तो कभी अनौपचारिक रूप में। पाठ में से दोनों प्रकार के तीन-तीन उदाहरण छाँटकर लिखिए।
2. पाठ में अनेक वाक्य ऐसे हैं, जहाँ लेखक अपनी बात कहता है कुछ वाक्य ऐसे है जहाँ वह पाठक-वर्ग को संबोधित करता है। सीधे तौर पर पाठक को संबोधित करने वाले पाँच वाक्यों को छाँटिए और सोचिए कि ऐसे संबोधन पाठक से रचना पढ़वा लेने में मददगार होते हैं?
3. नीचे दिए गए वाक्यों को पढ़िए।

    (क) पैसा पावर है।

    (ख) पैसे की उस पर्चेज़िंग पावर के प्रयोग में ही पावर का रस है।

    (ग) मित्र ने सामने मनीबैग फैला दिया।

    (घ) पेशगी ऑर्डर कोई नहीं लेते।

    ऊपर दिए गए इन वाक्यों की संरचना तो हिंदी भाषा की है लेकिन वाक्यों में एकाध शब्द अंग्रेज़ी भाषा के आए हैं । इस तरह के प्रयोग को कोड मिक्सिंग कहते हैं। एक भाषा के शब्दों के साथ दूसरी भाषा के शब्दों का मेलजोल! अब तक आपने जो पाठ पढ़े उसमें से ऐसे कोई पाँच उदाहरण चुनकर लिखिए। यह भी बताइए कि आगत शब्दों की जगह उनके हिंदी पर्यायों का ही प्रयोग किया जाए तो संप्रेषणीयता पर क्या प्रभाव पड़ता है।

© NCERT not to be republished

4. नीचे दिए गए वाक्यों के रेखांकित अंश पर ध्यान देते हुए उन्हें पढ़िए–
(क) *निर्बल ही धन की ओर झुकता है।*
(ख) *लोग संयमी भी होते हैं।*
(ग) *सभी कुछ तो लेने को जी होता था।*
ऊपर दिए गए वाक्यों के रेखांकित अंश 'ही', 'भी','तो' निपात हैं जो अर्थ पर बल देने के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं। वाक्य में इनके होने-न-होने और स्थान क्रम बदल देने से वाक्य के अर्थ पर प्रभाव पड़ता है, जैसे–
मुझे भी किताब चाहिए। (***मुझे*** महत्त्वपूर्ण है।)
मुझे किताब भी चाहिए। (***किताब*** महत्त्वपूर्ण है।)
आप निपात (***ही, भी, तो***) का प्रयोग करते हुए तीन-तीन वाक्य बनाइए। साथ ही ऐसे दो वाक्यों का भी निर्माण कीजिए जिसमें ये तीनों निपात एक साथ आते हों।

चर्चा करें

1. ***पर्चेज़िंग पावर*** से क्या अभिप्राय है?
बाज़ार की चकाचौंध से दूर ***पर्चेज़िंग पावर*** का सकारात्मक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है? आपकी मदद के लिए संकेत दिया जा रहा है–
(क) सामाजिक विकास के कार्यों में।
(ख) ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में...।

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

पर्चेज़िंग पावर – खरीदने की शक्ति
असबाब – सामान
दरकार – ज़रूरत
परिमित – सीमित
अतुलित – जिसकी तुलना न की जा सके
पेशगी – अग्रिम राशि
नाचीज़ – महत्त्वहीन
अपदार्थ – जिसका अस्तित्व न हो
दारुण – भयंकर
अकिंचित्कर – अर्थहीन
स्पृहा – इच्छा
पसोपेश – असमंजस

12070CH13

धर्मवीर भारती 13

जन्म : *सन् 1926, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)*
प्रमुख रचनाएँ : *कनुप्रिया, सात-गीत वर्ष, ठंडा लोहा (कविता संग्रह); बंद गली का आखिरी मकान (कहानी-संग्रह); सूरज का सातवाँ घोड़ा, गुनाहों का देवता (उपन्यास); अंधा युग (गीतिनाट्य); पश्यंती, कहनी-अनकहनी, मानव मूल्य और साहित्य, ठेले पर हिमालय (निबंध-संग्रह)*
प्रमुख सम्मान : *पद्मश्री, व्यास सम्मान एवं साहित्य के कई अन्य राष्ट्रीय पुरस्कार*
निधन : *सन् 1997*

अपनी सहज प्रवृत्तियों को मारो मत, लेकिन उनके दास भी न बनो। जीवन के सहज प्रवाह में उन्हें आने दो, फलीभूत होने दो। पर यदि वे निरंकुशता से हावी होने लगें तो उन्हें भस्म कर देने की तेजस्विता और आत्मनियंत्रण भी रखो।

गुनाहों का देवता उपन्यास से लोकप्रिय धर्मवीर भारती का आज़ादी के बाद के साहित्यकारों में विशिष्ट स्थान है। उनकी कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास, निबंध, गीतिनाट्य और रिपोर्ताज हिंदी साहित्य की उपलब्धियाँ हैं। भारती जी के लेखन की एक खासियत यह भी है कि हर उम्र और हर वर्ग के पाठकों के बीच उनकी अलग-अलग रचनाएँ लोकप्रिय हैं। वे मूल रूप से व्यक्ति स्वातंत्र्य, मानवीय संकट एवं रोमानी चेतना के रचनाकार हैं। तमाम सामाजिकता एवं उत्तरदायित्वों के बावजूद उनकी रचनाओं में व्यक्ति की स्वतंत्रता ही सर्वोपरि है। रुमानियत उनकी रचनाओं में संगीत में लय की तरह मौजूद है। उनका सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यास **गुनाहों का देवता** एक सरस और भावप्रवण प्रेम कथा है। दूसरे लोकप्रिय उपन्यास **सूरज का सातवाँ घोड़ा** पर हिंदी फ़िल्म भी बन चुकी है। इस उपन्यास में प्रेम को केंद्र में रखकर निम्न मध्यवर्ग की हताशा, आर्थिक संघर्ष, नैतिक विचलन और अनाचार को चित्रित

*किया गया है। स्वतंत्रता के बाद गिरते हुए जीवन मूल्य, अनास्था, मोहभंग, विश्वयुद्धों से उपजा हुआ डर और अमानवीयता की अभिव्यक्ति **अंधा युग** में हुई है। **अंधा युग** गीतिसाहित्य के श्रेष्ठ गीतिनाट्यों में है। मानव मूल्य और साहित्य पुस्तक समाज-सापेक्षिता को साहित्य के अनिवार्य मूल्य के रूप में विवेचित करती है।*

*इन विधाओं के अलावा भारती जी ने निबंध और रिपोर्ताज भी लिखे। उनके गद्य लेखन में सहजता और आत्मीयता है। बड़ी-से-बड़ी बात वो बातचीत की शैली में कहते हैं और सीधे पाठकों के मन को छू लेते हैं। एक लंबे समय तक हिंदी की साप्ताहिक पत्रिका **धर्मयुग** (फ़िलहाल प्रकाशन बंद है) के संपादक रहते हुए हिंदी पत्रकारिता को सजा-सँवारकर गंभीर पत्रकारिता का एक मानक बनाया।*

*यहाँ प्रस्तुत संस्मरण **काले मेघा पानी दे** में लोक-प्रचलित विश्वास और विज्ञान के द्वंद्व का सुंदर चित्रण है। विज्ञान का अपना तर्क है और विश्वास का अपना सामर्थ्य। इसमें कौन कितना सार्थक है, यह प्रश्न पढ़े-लिखे समाज को उद्वेलित करता रहता है। इसी दुविधा को लेकर लेखक ने पानी के संदर्भ में प्रसंग रचा है। आषाढ़ का पहला पखवारा बीत जाने के बाद भी खेती और बहुकाज प्रयोग के लिए पानी न हो तो जीवन चुनौतियों का घर बन जाता है और उन चुनौतियों का निराकरण विज्ञान न कर पाए तो उत्सवधर्मी भारतीय समाज चुप नहीं बैठता। वह किसी जुगाड़ में लग जाता है, प्रपंच रचता है और हर कीमत पर जीवित रहने के लिए अशिक्षा और बेबसी के भीतर से उपाय और काट की खोज करता है।*

लेखक ने अपने किशोर जीवन के इस संस्मरण में दिखलाया है कि अनावृष्टि दूर करने के लिए गाँव के बच्चों की इंदर सेना द्वार-द्वार पानी माँगते चलती है और लेखक का तर्कशील किशोर मन भीषण सूखे में उसे पानी की निर्मम बरबादी के रूप में देखता है। इसे किशोर मन का वितर्क नहीं, वैज्ञानिक तर्क ही कहना चाहिए और विज्ञान विषय की इतने दीर्घकाल तक पढ़ाई और विज्ञानोपलब्ध आविष्कारों से अपने जीवन को भौतिक सुख-सुविधाओं से भरते रहने के बावजूद इस देश के जनमानस में ऐसी वैज्ञानिक दृष्टि का न जनम पाना अफ़सोसनाक ही कहा जा सकता है। पर जनता के सामूहिक चित्त में बैठे विश्वासों का क्या करें, जिन से संचालित होने वाले कुछ लौकिक कर्मकांड संस्कृति की घटना के रूप में हमें लगते हैं। यदि वे विश्वास प्रत्यक्षत: जानलेवा या नस्ल-जाति, मज़हब और लिंग के आधार पर किसी समुदाय के लिए अपमानजनक हों, तब तो उन्हें अंधविश्वास कहकर उनका शीघ्रातिशीघ्र निराकरण ही एकमात्र कर्तव्य है, पर यदि कुछ विश्वास विज्ञानसम्मत न होकर भी उक्त तरह से हानिकर न हों तो उनके साथ भी उसी प्रकार का बर्ताव क्या उचित है? ऐसा करने में क्या हमारे सांस्कृतिक मन के खाली-खाली हो जाने का खतरा नहीं है?

© NCERT not to be republished

विश्वास की भी तो एक रचनात्मक भूमिका हो सकती है आपातकाल में निराशा दूर करने या अधीरता को थामने अथवा विभक्त जन-चेतना को जोड़ने के अर्थ में। अब सवाल रह जाता है कि बारिश के लिए किए जाने वाले उक्त भोले प्रयत्न किस कोटि के अंतर्गत हैं? लेखक ने कोई निर्णय नहीं दिया है। पर एक बात स्पष्ट होती है कि जीजी की संतुष्टि और अपने प्रति उनका सद्भाव बचाए रखने के लिए वह उन तमाम रीति-रिवाजों को ऊपरी तौर पर ही सही, अपनाने को बचपन में बाध्य बना रहता था। इससे क्या संकेत लिया जा सकता है? विज्ञान का सत्य बड़ा है या सहज प्रेम का रस? या दोनों?

© NCERT not to be republished

काले मेघा पानी दे

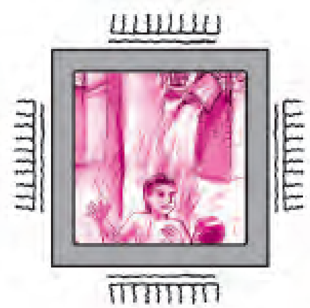

उन लोगों के दो नाम थे–इंदर सेना या मेढक-मंडली। बिलकुल एक-दूसरे के विपरीत। जो लोग उनके नग्नस्वरूप शरीर, उनकी उछलकूद, उनके शोर-शराबे और उनके कारण गली में होनेवाले कीचड़ काँदो से चिढ़ते थे, वे उन्हें कहते थे मेढक-मंडली। उनकी अगवानी गालियों से होती थी। वे होते थे दस-बारह बरस से सोलह-अठारह बरस के लड़के, साँवला नंगा बदन सिर्फ़ एक जाँघिया या कभी-कभी सिर्फ़ लंगोटी। एक जगह इकट्ठे होते थे। पहला जयकारा लगता था, "बोल गंगा मैया की जय।" जयकारा सुनते ही लोग सावधान हो जाते थे। स्त्रियाँ और लड़कियाँ छज्जे, बारजे से झाँकने लगती थीं और यह विचित्र नंग-धड़ंग टोली उछलती-कूदती समवेत पुकार लगाती थी:

काले मेघा पानी दे
गगरी फूटी बैल पियासा
पानी दे, गुड़धानी दे
काले मेघा पानी दे।

उछलते-कूदते, एक-दूसरे को धकियाते ये लोग गली में किसी दुमहले मकान के सामने रुक जाते, "पानी दे मैया, इंदर सेना आई है।" और जिन घरों में आखीर जेठ या शुरू आषाढ़ के उन सूखे दिनों में पानी की कमी भी होती थी, जिन घरों के कुएँ भी सूखे होते थे, उन घरों से भी सहेज कर रखे हुए पानी में से बाल्टी या घड़े भर-भर कर इन बच्चों को सर से पैर तक तर कर दिया जाता था। ये भीगे बदन मिट्टी में लोट लगाते थे, पानी फेंकने से पैदा हुए कीचड़ में लथपथ हो जाते थे। हाथ, पाँव, बदन, मुँह, पेट सब पर गंदा कीचड़ मल कर फिर हाँक लगाते "बोल गंगा मैया की जय" और फिर मंडली बाँध कर उछलते-कूदते अगले घर की ओर चल पड़ते बादलों को टेरते, "काले मेघा पानी दे।" वे सचमुच ऐसे दिन होते जब गली-मुहल्ला, गाँव-शहर हर जगह लोग गरमी में भुन-भुन कर त्राहिमाम कर रहे होते, जेठ के दसतपा बीत कर आषाढ़ का पहला पखवारा भी बीत चुका होता पर क्षितिज पर कहीं बादल की रेख भी नहीं दीखती होती, कुएँ सूखने लगते, नलों में एक तो बहुत कम पानी आता और आता भी तो आधी रात को भी मानो खौलता हुआ पानी

© NCERT not to be republished

हो। शहरों की तुलना में गाँव में और भी हालत खराब होती थी। जहाँ जुताई होनी चाहिए वहाँ खेतों की मिट्टी सूख कर पत्थर हो जाती, फिर उसमें पपड़ी पड़ कर ज़मीन फटने लगती, लू ऐसी कि चलते-चलते आदमी आधे रास्ते में लू खा कर गिर पड़े। ढोर-ढंगर प्यास के मारे मरने लगते लेकिन बारिश का कहीं नाम निशान नहीं, ऐसे में पूजा-पाठ कथा-विधान सब करके लोग जब हार जाते तब अंतिम उपाय के रूप में निकलती यह इंदर सेना। वर्षा के बादलों के स्वामी, हैं इंद्र और इंद्र की सेना टोली बाँध कर कीचड़ में लथपथ निकलती, पुकारते हुए मेघों को, पानी माँगते हुए प्यासे गलों और सूखे खेतों के लिए। पानी की आशा पर जैसे सारा जीवन आकर टिक गया हो। बस एक बात मेरे समझ में नहीं आती थी कि जब चारों ओर पानी की इतनी कमी है तो लोग घर में इतनी कठिनाई से इकट्ठा करके रखा हुआ पानी बाल्टी भर-भर कर इन पर क्यों फेंकते हैं। कैसी निर्मम बरबादी है पानी की। देश

की कितनी क्षति होती है इस तरह के अंधविश्वासों से। कौन कहता है इन्हें इंद्र की सेना? अगर इंद्र महाराज से ये पानी दिलवा सकते हैं तो खुद अपने लिए पानी क्यों नहीं माँग लेते? क्यों मुहल्ले भर का पानी नष्ट करवाते घूमते हैं, नहीं यह सब पाखंड है। अंधविश्वास है। ऐसे ही अंधविश्वासों के कारण हम अंग्रेज़ों से पिछड़ गए और गुलाम बन गए।

मैं असल में था तो इन्हीं मेढक-मंडली वालों की उमर का, पर कुछ तो बचपन के आर्यसमाजी संस्कार थे और एक कुमार-सुधार सभा कायम हुई थी उसका उपमंत्री बना दिया गया था– सो समाज-सुधार का जोश कुछ ज़्यादा ही था। अंधविश्वासों के खिलाफ़ तो तरकस में तीर रख कर घूमता रहता था। मगर मुश्किल यह थी कि मुझे अपने बचपन में जिससे सबसे ज़्यादा प्यार मिला वे थीं जीजी। यूँ मेरी रिश्ते में कोई नहीं थीं। उम्र में मेरी माँ से भी बड़ी थीं, पर अपने लड़के-बहू सबको छोड़ कर उनके प्राण मुझी में बसते थे। और वे थीं उन तमाम रीति-रिवाजों, तीज-त्योहारों, पूजा-अनुष्ठानों की खान जिन्हें कुमार-सुधार सभा का यह उपमंत्री अंधविश्वास कहता था, और उन्हें जड़ से उखाड़ फेंकना चाहता था। पर मुश्किल यह थी कि उनका कोई पूजा-विधान, कोई त्योहार अनुष्ठान मेरे बिना पूरा नहीं होता था। दीवाली है तो गोबर और कौड़ियों से गोवर्धन और सतिया बनाने में लगा हूँ, जन्माष्टमी है तो रोज़ आठ दिन की झाँकी तक को सजाने और पँजीरी बाँटने में लगा हूँ, हर-छठ है तो छोटी रंगीन कुल्हियों में भूजा भर रहा हूँ। किसी में भुना चना, किसी में भुनी मटर, किसी में भुने अरवा चावल, किसी में भुना गेहूँ। जीजी यह सब मेरे हाथों से करातीं, ताकि उनका पुण्य मुझे मिले। केवल मुझे।

लेकिन इस बार मैंने साफ़ इनकार कर दिया। नहीं फेंकना है मुझे बाल्टी भर-भर कर पानी इस गंदी मेढक-मंडली पर। जब जीजी बाल्टी भर कर पानी ले गईं उनके बूढ़े पाँव डगमगा रहे थे, हाथ काँप रहे थे, तब भी मैं अलग मुँह फुलाए खड़ा रहा। शाम को उन्होंने लड्डू-मठरी खाने को दिए तो मैंने उन्हें हाथ से अलग खिसका दिया। मुँह फेरकर बैठ गया, जीजी से बोला भी नहीं। पहले वे भी तमतमाईं, लेकिन ज़्यादा देर तक उनसे गुस्सा नहीं रहा गया। पास आ कर मेरा सर अपनी गोद में लेकर बोलीं, "देख भइया रूठ मत। मेरी बात सुन। यह सब अंधविश्वास नहीं है। हम इन्हें पानी नहीं देंगे तो इंद्र भगवान हमें पानी कैसे देंगे?" मैं कुछ नहीं बोला। फिर जीजी बोलीं। "तू इसे पानी की बरबादी समझता है पर यह बरबादी नहीं है। यह पानी का अर्घ्य चढ़ाते हैं, जो चीज़ मनुष्य पाना चाहता है उसे पहले देगा नहीं तो पाएगा कैसे? इसीलिए ऋषि-मुनियों ने दान को सबसे ऊँचा स्थान दिया है।"

"ऋषि-मुनियों को काहे बदनाम करती हो जीजी? क्या उन्होंने कहा था कि जब आदमी बूँद-बूँद पानी को तरसे तब पानी कीचड़ में बहाओ।"

कुछ देर चुप रही जीजी, फिर मठरी मेरे मुँह में डालती हुई बोलीं, "देख बिना त्याग के दान नहीं होता। अगर तेरे पास लाखों-करोड़ों रुपये हैं और उसमें से तू दो-चार रुपये किसी को दे दे तो यह क्या त्याग हुआ। त्याग तो वह होता है कि जो चीज़ तेरे पास भी कम है, जिसकी तुझको भी ज़रूरत है तो अपनी ज़रूरत पीछे रख कर दूसरे के कल्याण के लिए उसे दे तो त्याग तो वह होता है, दान तो वह होता है, उसी का फल मिलता है।"

"फल-वल कुछ नहीं मिलता सब ढकोसला है।" मैंने कहा तो, पर कहीं मेरे तर्कों का किला पस्त होने लगा था। मगर मैं भी जिद्द पर अड़ा था।

फिर जीजी बोलीं, "देख तू तो अभी से पढ़-लिख गया है। मैंने तो गाँव के मदरसे का भी मुँह नहीं देखा। पर एक बात देखी है कि अगर तीस-चालीस मन गेहूँ उगाना है तो किसान पाँच-छह सेर अच्छा गेहूँ अपने पास से लेकर ज़मीन में क्यारियाँ बना कर फेंक देता है। उसे बुवाई कहते हैं। यह जो सूखे हम अपने घर का पानी इन पर फेंकते हैं वह भी बुवाई है। यह पानी गली में बोएँगे तो सारे शहर, कस्बा, गाँव पर पानीवाले बादलों की फसल आ जाएगी। हम बीज बनाकर पानी देते हैं, फिर काले मेघा से पानी माँगते हैं। सब ऋषि-मुनि कह गए हैं कि पहले खुद दो तब देवता तुम्हें चौगुना-अठगुना करके लौटाएँगे भइया, यह तो हर आदमी का आचरण है, जिससे सबका आचरण बनता है। यथा राजा तथा प्रजा सिर्फ़ यही सच नहीं है। सच यह भी है कि यथा प्रजा तथा राजा। यही तो गांधी जी महाराज कहते हैं।" जीजी का एक लड़का राष्ट्रीय आंदोलन में पुलिस की लाठी खा चुका था, तब से जीजी गांधी महाराज की बात अकसर करने लगी थीं।

इन बातों को आज पचास से ज़्यादा बरस होने को आए पर ज्यों की त्यों मन पर दर्ज हैं। कभी-कभी कैसे-कैसे संदर्भों में ये बातें मन को कचोट जाती हैं, हम आज देश के लिए करते क्या हैं? माँगें हर क्षेत्र में बड़ी-बड़ी हैं पर त्याग का कहीं नाम-निशान नहीं है। अपना स्वार्थ आज एकमात्र लक्ष्य रह गया है। हम चटखारे लेकर इसके या उसके भ्रष्टाचार की बातें करते हैं पर क्या कभी हमने जाँचा है कि अपने स्तर पर अपने दायरे में हम उसी भ्रष्टाचार के अंग तो नहीं बन रहे हैं? काले मेघा दल के दल उमड़ते हैं, पानी झमाझम बरसता है, पर गगरी फूटी की फूटी रह जाती है, बैल पियासे के पियासे रह जाते हैं? आखिर कब बदलेगी यह स्थिति?

अभ्यास

पाठ के साथ

1. लोगों ने लड़कों की टोली को ***मेढक-मंडली*** नाम किस आधार पर दिया? यह टोली अपने आपको ***इंदर सेना*** कहकर क्यों बुलाती थी?
2. जीजी ने ***इंदर सेना*** पर पानी फेंके जाने को किस तरह सही ठहराया?
3. ***पानी दे, गुड़धानी दे*** मेघों से पानी के साथ-साथ गुड़धानी की माँग क्यों की जा रही है?
4. ***गगरी फूटी बैल पियासा*** इंदर सेना के इस खेलगीत में बैलों के प्यासा रहने की बात क्यों मुखरित हुई है?
5. ***इंदर सेना*** सबसे पहले गंगा मैया की जय क्यों बोलती है? नदियों का भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक परिवेश में क्या महत्त्व है?
6. रिश्तों में हमारी भावना-शक्ति का बँट जाना विश्वासों के जंगल में सत्य की राह खोजती हमारी बुद्धि की शक्ति को कमज़ोर करती है। पाठ में जीजी के प्रति लेखक की भावना के संदर्भ में इस कथन के औचित्य की समीक्षा कीजिए।

पाठ के आसपास

1. क्या ***इंदर सेना*** आज के युवा वर्ग का प्रेरणास्रोत हो सकती है? क्या आपके स्मृति-कोश में ऐसा कोई अनुभव है जब युवाओं ने संगठित होकर समाजोपयोगी रचनात्मक कार्य किया हो, उल्लेख करें।
2. तकनीकी विकास के दौर में भी भारत की अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर है। कृषि-समाज में चैत्र, वैशाख सभी माह बहुत महत्त्वपूर्ण हैं पर आषाढ़ का चढ़ना उनमें उल्लास क्यों भर देता है?
3. पाठ के संदर्भ में इसी पुस्तक में दी गई निराला की कविता ***बादल-राग*** पर विचार कीजिए और बताइए कि आपके जीवन में बादलों की क्या भूमिका है?
4. ***त्याग तो वह होता... उसी का फल मिलता है।*** अपने जीवन के किसी प्रसंग से इस सूक्ति की सार्थकता समझाइए।
5. ***पानी का संकट*** वर्तमान स्थिति में भी बहुत गहराया हुआ है। इसी तरह के पर्यावरण से संबद्ध अन्य संकटों के बारे में लिखिए।
6. आपकी ***दादी-नानी*** किस तरह के विश्वासों की बात करती हैं? ऐसी स्थिति में उनके प्रति आपका रवैया क्या होता है? लिखिए।

© NCERT not to be republished

चर्चा करें

1. बादलों से संबधित अपने-अपने क्षेत्र में प्रचलित गीतों का संकलन करें तथा कक्षा में चर्चा करें।
2. पिछले 15-20 सालों में पर्यावरण से छेड़-छाड़ के कारण भी प्रकृति-चक्र में बदलाव आया है, जिसका परिणाम मौसम का असंतुलन है। वर्तमान बाड़मेर (राजस्थान) में आई बाढ़, मुंबई की बाढ़ तथा महाराष्ट्र का भूकंप या फिर सुनामी भी इसी का नतीजा है। इस प्रकार की घटनाओं से जुड़ी सूचनाओं, चित्रों का संकलन कीजिए और एक प्रदर्शनी का आयोजन कीजिए, जिसमें ***बाज़ार दर्शन*** पाठ में बनाए गए विज्ञापनों को भी शामिल कर सकते हैं। और हाँ ऐसी स्थितियों से बचाव के उपाय पर पर्यावरण विशेषज्ञों की राय को प्रदर्शनी में मुख्य स्थान देना न भूलें।

विज्ञापन की दुनिया

1. 'पानी बचाओ' से जुड़े विज्ञापनों को एकत्र कीजिए। इस संकट के प्रति चेतावनी बरतने के लिए आप किस प्रकार का विज्ञापन बनाना चाहेंगे?

शब्द-छवि

गुड़धानी	–	गुड़ और चने से बना एक प्रकार का लड्डू
टेरते	–	पुकारते
दसतपा	–	तपते दस दिन
पखवारा	–	पंद्रह दिन की अवधि
ढोर-ढंगर	–	पशु
सतिया	–	स्वस्तिक चिह्न
अर्घ्य	–	जल चढ़ाना
अरवा चावल	–	ऐसा चावल जिसे धान को बिना उबाले निकाला गया हो
हर-छठ	–	जन्माष्टमी के दो दिन पूर्व मनाया जाने वाला पर्व (पूर्वी उत्तर प्रदेश से संबंधित)
भूजा	–	भुना हुआ अन्न
किला पस्त	–	हार जाना

© NCERT not to be republished

12070CH14

फणीश्वर नाथ रेणु 14

जन्म : *4 मार्च, सन् 1921, औराही हिंगना (ज़िला पूर्णिया अब अररिया) बिहार में*

प्रमुख रचनाएँ : *मैला आँचल, परती परिकथा, दीर्घतपा, जुलूस, कितने चौराहे (उपन्यास); ठुमरी, अगिनखोर, आदिम रात्रि की महक, एक श्रावणी दोपहरी की धूप (कहानी-संग्रह); ॠणजल धनजल, वनतुलसी की गंध, श्रुत-अश्रुत पूर्व (संस्मरण); नेपाली क्रांति कथा (रिपोर्ताज); तथा रेणु रचनावली (पाँच खंडों में समग्र)*

निधन : *11 अप्रैल, सन् 1977 पटना में*

© NCERT not to be republished

कुछ ऐसे चरित्र होते हैं जो प्राण-प्रतिष्ठा पाते ही अपने सिरजनहार के बँधे-बँधाए नियम-कानून, नीति अथवा फ़ार्मूले को तोड़कर बाहर निकल आते हैं और अपने जीवन को अपने मन के मुताबिक गढ़ने लगते हैं।

हिंदी साहित्य में आंचलिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित कथाकार फणीश्वर नाथ रेणु का जीवन उतार-चढ़ावों एवं संघर्षों से भरा हुआ था। साहित्य के अलावा विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक आंदोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भागीदारी की। उनकी यह भागीदारी एक ओर देश के निर्माण में सक्रिय रही तो दूसरी ओर रचनात्मक साहित्य को नया तेवर देने में सहायक रही।

सन् 1954 में उनका बहुचर्चित आंचलिक उपन्यास **मैला आँचल** प्रकाशित हुआ जिसने हिंदी उपन्यास को एक नयी दिशा दी। हिंदी जगत में आंचलिक उपन्यासों पर विमर्श **मैला आँचल** से ही प्रारंभ हुआ। आंचलिकता की अवधारणा ने कथा-साहित्य में गाँव की भाषा-संस्कृति और वहाँ के लोक जीवन को केंद्र में ला खड़ा किया। लोकगीत, लोकोक्ति, लोकसंस्कृति, लोकभाषा एवं लोकनायक की इस अवधारणा ने भारी-भरकम चीज़ एवं नायक की जगह अंचल को ही नायक बना डाला। उनकी रचनाओं में अंचल कच्चे और

अनगढ़ रूप में ही आता है इसीलिए उनका यह अंचल एक तरफ़ शस्य-श्यामल है तो दूसरी तरफ़ धूल भरा और मैला भी। स्वातंत्र्योत्तर भारत में जब सारा विकास शहर-केंद्रित होता जा रहा था। ऐसे में रेणु ने अपनी रचनाओं से अंचल की समस्याओं की ओर भी लोगों का ध्यान खींचा। उनकी रचनाएँ इस अवधारणा को भी पुष्ट करती हैं कि भाषा की सार्थकता बोली के साहचर्य में ही है।

फणीश्वर नाथ रेणु की प्रतिनिधि कहानियों में **पहलवान की ढोलक** भी शामिल है। यह कहानी कथाकार रेणु की समस्त विशेषताओं को एक साथ अभिव्यक्त करती है। रेणु की लेखनी में अपने गाँव, अंचल एवं संस्कृति को सजीव करने की अद्‌भुत क्षमता है। ऐसा लगता है मानो हरेक पात्र वास्तविक जीवन ही जी रहा हो। पात्रों एवं परिवेश का इतना सच्चा चित्रण अत्यंत दुर्लभ है। रेणु वैसे गिने-चुने कथाकारों में से हैं जिन्होंने गद्य में भी संगीत पैदा कर दिया है, अन्यथा ढोलक की उठती-गिरती आवाज़ और पहलवान के क्रियाकलापों का ऐसा सामंजस्य दुर्लभ है।

इन विशेषताओं के साथ रेणु की यह कहानी व्यवस्था के बदलने के साथ लोक-कला और इसके कलाकार के अप्रासंगिक हो जाने की कहानी है। राजा साहब की जगह नए राजकुमार का आकर जम जाना सिर्फ़ व्यक्तिगत सत्ता परिवर्तन नहीं; बल्कि ज़मीनी पुरानी व्यवस्था के पूरी तरह उलट जाने और उस पर सभ्यता के नाम पर एकदम नयी व्यवस्था के आरोपित हो जाने का प्रतीक है। यह 'भारत' पर 'इंडिया' के छा जाने की समस्या है, जो लुट्टन पहलवान को लोक-कलाकार के आसन से उठा कर पेट-भरने के लिए हाय-तौबा करने वाली निरीहता की भूमि पर पटक देती है। ऐसी स्थिति में गाँव की गरीबी पहलवानी जैसे शौक को क्या पालती? फिर भी, पहलवान जीवट ढोल के बोल में अपने आपको न सिर्फ़ जिलाए रखता है, बल्कि भूख व महामारी से दम तोड़ रहे गाँव को मौत से लड़ने की ताकत भी देते रहता है। कहानी के अंत में भूख-महामारी की शक्ल में आए मौत के षड्‌यंत्र जब अजेय लुट्टन की भरी-पूरी पहलवानी को फटे ढोल की पोल में बदल देते हैं, तो इस करुणा/त्रासदी में लुट्टन हमारे सामने कई सवाल छोड़ जाता है। वह पोल पुरानी व्यवस्था की है या नयी व्यवस्था की? क्या कला की प्रासंगिकता व्यवस्था की मुखापेक्षी है अथवा उसका कोई स्वतंत्र मूल्य भी है? मनुष्यता की साधना और जीवन-सौंदर्य के लिए लोक कलाओं को प्रासंगिक बनाए रखने हेतु हमारी क्या भूमिका हो सकती है? निश्चय ही यह पाठ हमारे मन में कई ऐसे प्रश्न छोड़ जाता है।

© NCERT not to be republished

पहलवान की ढोलक

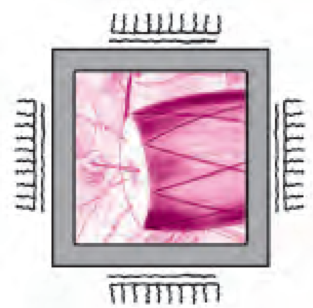

जाड़े का दिन। अमावस्या की रात–ठंडी और काली। मलेरिया और हैज़े से पीड़ित गाँव भयार्त्त शिशु की तरह थर-थर काँप रहा था। पुरानी और उजड़ी बाँस-फूस की झोंपड़ियों में अंधकार और सन्नाटे का सम्मिलित साम्राज्य! अँधेरा और निस्तब्धता!

अँधेरी रात चुपचाप आँसू बहा रही थी। निस्तब्धता करुण सिसकियों और आहों को बलपूर्वक अपने हृदय में ही दबाने की चेष्टा कर रही थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। पृथ्वी पर कहीं प्रकाश का नाम नहीं। आकाश से टूटकर यदि कोई भावुक तारा पृथ्वी पर जाना भी चाहता तो उसकी ज्योति और शक्ति रास्ते में ही शेष हो जाती थी। अन्य तारे उसकी भावुकता अथवा असफलता पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे।

सियारों का क्रंदन और पेचक की डरावनी आवाज़ कभी-कभी निस्तब्धता को अवश्य भंग कर देती थी। गाँव की झोंपड़ियों से कराहने और कै करने की आवाज़, 'हरे राम! हे भगवान!' की टेर अवश्य सुनाई पड़ती थी। बच्चे भी कभी-कभी निर्बल कंठों से 'माँ-माँ' पुकारकर रो पड़ते थे। पर इससे रात्रि की निस्तब्धता में विशेष बाधा नहीं पड़ती थी।

कुत्तों में परिस्थिति को ताड़ने की एक विशेष बुद्धि होती है। वे दिन-भर राख के घूरों पर गठरी की तरह सिकुड़कर, मन मारकर पड़े रहते थे। संध्या या गंभीर रात्रि को सब मिलकर रोते थे।

रात्रि अपनी भीषणताओं के साथ चलती रहती और उसकी सारी भीषणता को, ताल ठोककर, ललकारती रहती थी– सिर्फ़ पहलवान की ढोलक! संध्या से लेकर प्रातःकाल तक एक ही गति से बजती रहती–'चट्-धा, गिड़-धा,...चट्-धा, गिड़-धा!' यानी 'आ जा भिड़ जा, आ जा, भिड़ जा!'... बीच-बीच में–'चटाक्-चट्-धा, चटाक्-चट्-धा!' यानी 'उठाकर पटक दे! उठाकर पटक दे!!'

यही आवाज़ मृत-गाँव में संजीवनी शक्ति भरती रहती थी।

लुट्टन सिंह पहलवान!

यों तो वह कहा करता था– 'लुट्टन सिंह पहलवान को होल इंडिया भर के लोग जानते

© NCERT not to be republished

चट्-धा, गिड़-धा,...
चट्-धा, गिड़-धा,...
आ जा भिड़ जा
आ जा भिड़ जा

हैं', किंतु उसके 'होल-इंडिया' की सीमा शायद एक ज़िले की सीमा के बराबर ही हो। ज़िले भर के लोग उसके नाम से अवश्य परिचित थे।

लुट्टन के माता-पिता उसे नौ वर्ष की उम्र में ही अनाथ बनाकर चल बसे थे। सौभाग्यवश शादी हो चुकी थी, वरना वह भी माँ-बाप का अनुसरण करता। विधवा सास ने पाल-पोस कर बड़ा किया। बचपन में वह गाय चराता, धारोष्ण दूध पीता और कसरत किया करता था। गाँव के लोग उसकी सास को तरह-तरह की तकलीफ़ दिया करते थे; लुट्टन के सिर पर कसरत की धुन लोगों से बदला लेने के लिए ही सवार हुई थी। नियमित कसरत ने किशोरावस्था में ही उसके सीने और बाँहों को सुडौल तथा मांसल बना दिया था। जवानी में कदम रखते ही वह गाँव में सबसे अच्छा पहलवान समझा जाने लगा। लोग उससे डरने लगे और वह दोनों हाथों को दोनों ओर 45 डिग्री की दूरी पर फैलाकर, पहलवानों की भाँति चलने लगा। वह कुश्ती भी लड़ता था।

एक बार वह 'दंगल' देखने श्यामनगर मेला गया। पहलवानों की कुश्ती और दाँव-पेंच देखकर उससे नहीं रहा गया। जवानी की मस्ती और ढोल की ललकारती हुई आवाज़ ने उसकी नसों में बिजली उत्पन्न कर दी। उसने बिना कुछ सोचे-समझे दंगल में 'शेर के बच्चे' को चुनौती दे दी।

'शेर के बच्चे' का असल नाम था चाँद सिंह। वह अपने गुरु पहलवान बादल सिंह के साथ, पंजाब से पहले-पहल श्यामनगर मेले में आया था। सुंदर जवान, अंग-प्रत्यंग से सुंदरता टपक पड़ती थी। तीन दिनों में ही पंजाबी और पठान पहलवानों के गिरोह के अपनी जोड़ी और उम्र के सभी पट्ठों को पछाड़कर उसने 'शेर के बच्चे' की टायटिल प्राप्त कर ली थी। इसलिए वह दंगल के मैदान में लँगोट लगाकर एक अजीब किलकारी भरकर छोटी दुलकी लगाया करता था। देशी नौजवान पहलवान, उससे लड़ने की कल्पना से भी घबराते थे। अपनी टायटिल को सत्य प्रमाणित करने के लिए ही चाँद सिंह बीच-बीच में दहाड़ता फिरता था।

श्यामनगर के दंगल और शिकार-प्रिय वृद्ध राजा साहब उसे दरबार में रखने की बातें कर ही रहे थे कि लुट्टन ने शेर के बच्चे को चुनौती दे दी। सम्मान-प्राप्त चाँद सिंह पहले तो किंचित, उसकी स्पर्धा पर मुसकुराया फिर बाज़ की तरह उस पर टूट पड़ा।

शांत दर्शकों की भीड़ में खलबली मच गई– 'पागल है पागल, मरा-ऐं! मरा-मरा!'... पर वाह रे बहादुर! लुट्टन बड़ी सफ़ाई से आक्रमण को सँभालकर निकलकर उठ खड़ा हुआ और पैंतरा दिखाने लगा। राजा साहब ने कुश्ती बंद करवाकर लुट्टन को अपने पास बुलवाया और समझाया। अंत में, उसकी हिम्मत की प्रशंसा करते हुए, दस रुपये का नोट देकर कहने लगे– ''जाओ, मेला देखकर घर जाओ!...''

© NCERT not to be republished

''नहीं सरकार, लड़ेंगे... हुकुम हो सरकार...!''

''तुम पागल हो, ...जाओ!...''

मैनेजर साहब से लेकर सिपाहियों तक ने धमकाया– ''देह में गोश्त नहीं, लड़ने चला है शेर के बच्चे से! सरकार इतना समझा रहे हैं...!!''

''दुहाई सरकार, पत्थर पर माथा पटककर मर जाऊँगा... मिले हुकुम!'' वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाता रहा था।

भीड़ अधीर हो रही थी। बाजे बंद हो गए थे। पंजाबी पहलवानों की जमायत क्रोध से पागल होकर लुट्टन पर गालियों की बौछार कर रही थी। दर्शकों की मंडली उत्तेजित हो रही थी। कोई-कोई लुट्टन के पक्ष से चिल्ला उठता था–''उसे लड़ने दिया जाए!''

अकेला चाँद सिंह मैदान में खड़ा व्यर्थ मुसकुराने की चेष्टा कर रहा था। पहली पकड़ में ही अपने प्रतिद्वंद्वी की शक्ति का अंदाज़ा उसे मिल गया था।

विवश होकर राजा साहब ने आज्ञा दे दी– "लड़ने दो!"

बाजे बजने लगे। दर्शकों में फिर उत्तेजना फैली। कोलाहल बढ़ गया। मेले के दुकानदार दुकान बंद करके दौड़े–"चाँद सिंह की जोड़ी-चाँद की कुश्ती हो रही है!!"

'चट्-धा, गिड़-धा, चट्-धा, गिड़-धा...'

भरी आवाज़ में एक ढोल-जो अब तक चुप था-बोलने लगा–

'ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना, ढाक्-ढिना...'

(अर्थात्-वाह पट्ठे! वाह पट्ठे !!)

लुट्टन को चाँद ने कसकर दबा लिया था।

–"अरे गया-गया!!" दर्शकों ने तालियाँ बजाईं–"हलुआ हो जाएगा, हलुआ.! हँसी-खेल नहीं-शेर का बच्चा है...बच्चू!"

'चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा, चट्-गिड़-धा...'

(मत डरना, मत डरना, मत डरना...)

लुट्टन की गर्दन पर केहुनी डालकर चाँद 'चित्त' करने की कोशिश कर रहा था।

"वहीं दफ़ना दे, बहादुर!" बादल सिंह अपने शिष्य को उत्साहित कर रहा था।

लुट्टन की आँखें बाहर निकल रही थीं। उसकी छाती फटने-फटने को हो रही थी। राजमत, बहुमत चाँद के पक्ष में था। सभी चाँद को शाबाशी दे रहे थे। लुट्टन के पक्ष में सिर्फ़ ढोल की आवाज़ थी, जिसकी ताल पर वह अपनी शक्ति और दाँव-पेंच की परीक्षा ले रहा था–अपनी हिम्मत को बढ़ा रहा था। अचानक ढोल की एक पतली आवाज़ सुनाई पड़ी–

'धाक-धिना, तिरकट-तिना, धाक-धिना, तिरकट-तिना...!!'

लुट्टन को स्पष्ट सुनाई पड़ा, ढोल कह रहा था–"दाँव काटो, बाहर हो जा दाँव काटो, बाहर हो जा!!"

© NCERT not to be republished

लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही, लुट्टन दाँव काटकर बाहर निकला और तुरंत लपककर उसने चाँद की गर्दन पकड़ ली।

"वाह रे मिट्टी के शेर!"

"अच्छा! बाहर निकल आया? इसीलिए तो....।" जनमत बदल रहा था।

मोटी और भौंड़ी आवाज़ वाला ढोल बज उठा–'चटाक्-चट्-धा,चटाक्-चट्-धा...'(उठा पटक दे! उठा पटक दे!!)

लुट्टन ने चालाकी से दाँव और ज़ोर लगाकर चाँद को ज़मीन पर दे मारा।

'धिना-धिना, धिक-धिना!'(अर्थात् चित करो, चित करो!!)

लुट्टन ने अंतिम ज़ोर लगाया–चाँद सिंह चारों खाने चित हो रहा।

'धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़, धा-गिड़-गिड़,'...(वाह बहादुर! वाह बहादुर!! वाह बहादुर!!)

जनता यह स्थिर नहीं कर सकी कि किसकी जय-ध्वनि की जाए। फलतः अपनी-अपनी इच्छानुसार किसी ने 'माँ दुर्गा की', 'महावीर जी की', कुछ ने राजा श्यामानंद की जय-ध्वनि की। अंत में सम्मिलित 'जय!' से आकाश गूँज उठा।

विजयी लुट्टन कूदता-फाँदता, ताल-ठोंकता सबसे पहले बाजे वालों की ओर दौड़ा और ढोलों को श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। फिर दौड़कर उसने राजा साहब को गोद में उठा लिया। राजा साहब के कीमती कपड़े मिट्टी में सन गए। मैनेजर साहब ने आपत्ति की–"हें-हें...अरे-रे!" किंतु राजा साहब ने स्वयं उसे छाती से लगाकर गद्गद होकर कहा–"जीते रहो, बहादुर! तुमने मिट्टी की लाज रख ली!"

पंजाबी पहलवानों की जमायत चाँद सिंह की आँखें पोंछ रही थी। लुट्टन को राजा साहब ने पुरस्कृत ही नहीं किया, अपने दरबार में सदा के लिए रख लिया। तब से लुट्टन राज-पहलवान हो गया और राजा साहब उसे लुट्टन सिंह कहकर पुकारने लगे। राज-पंडितों ने मुँह बिचकाया–"हुज़ूर! जाति का ... सिंह...!"

मैनेजर साहब क्षत्रिय थे। 'क्लीन-शेव्ड' चेहरे को संकुचित करते हुए, अपनी शक्ति लगाकर नाक के बाल उखाड़ रहे थे। चुटकी से अत्याचारी बाल को रगड़ते हुए बोले–"हाँ सरकार, यह अन्याय है!"

राजा साहब ने मुसकुराते हुए सिर्फ़ इतना ही कहा–"उसने क्षत्रिय का काम किया है।"

उसी दिन से लुट्टन सिंह पहलवान की कीर्ति दूर-दूर तक फैल गई। पौष्टिक भोजन और व्यायाम तथा राजा साहब की स्नेह-दृष्टि ने उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए। कुछ वर्षों में ही उसने एक-एक कर सभी नामी पहलवानों को मिट्टी सुँघाकर आसमान दिखा दिया।

काला खाँ के संबंध में यह बात मशहूर थी कि वह ज्यों ही लँगोट लगाकर 'आ-ली' कहकर अपने प्रतिद्वंद्वी पर टूटता है, प्रतिद्वंद्वी पहलवान को लकवा मार जाता है लुट्टन ने उसको भी पटककर लोगों का भ्रम दूर कर दिया।

उसके बाद से वह राज-दरबार का दर्शनीय 'जीव' ही रहा। चिड़ियाखाने में, पिंजड़े और ज़ंजीरों को झकझोर कर बाघ दहाड़ता–'हाँ -ऊँ, हाँ-ऊँ!!' सुनने वाले कहते–'राजा का बाघ बोला।'

ठाकुरबाड़े के सामने पहलवान गरजता– 'महा-वीर!' लोग समझ लेते, पहलवान बोला।

मेलों में वह घुटने तक लंबा चोगा पहने, अस्त-व्यस्त पगड़ी बाँधकर मतवाले हाथी की तरह झूमता चलता। दुकानदारों को चुहल करने की सूझती। हलवाई अपनी दुकान पर बुलाता–"पहलवान काका! ताज़ा रसगुल्ला बना है, ज़रा नाश्ता कर लो!"

पहलवान बच्चों की-सी स्वाभाविक हँसी हँसकर कहता–"अरे तनी-मनी काहे! ले आव डेढ़ सेर!" और बैठ जाता।

दो सेर रसगुल्ला को उदरस्थ करके, मुँह में आठ-दस पान की गिलोरियाँ ठूँस, ठुड्डी को पान के रस से लाल करते हुए अपनी चाल से मेले में घूमता। मेले से दरबार लौटने के समय उसकी अजीब हुलिया रहती–आँखों पर रंगीन अबरख का चश्मा, हाथ में खिलौने को नचाता और मुँह से पीतल की सीटी बजाता, हँसता हुआ वह वापस जाता। बल और शरीर की वृद्धि के साथ बुद्धि का परिणाम घटकर बच्चों की बुद्धि के बराबर ही रह गया था उसमें।

दंगल में ढोल की आवाज़ सुनते ही वह अपने भारी-भरकम शरीर का प्रदर्शन करना शुरू कर देता था। उसकी जोड़ी तो मिलती ही नहीं थी, यदि कोई उससे लड़ना भी चाहता तो राजा साहब लुट्टन को आज्ञा ही नहीं देते। इसलिए वह निराश होकर, लंगोट लगाकर देह में मिट्टी मल और उछालकर अपने को साँड़ या भैंसा साबित करता रहता था। बूढ़े राजा साहब देख-देखकर मुसकुराते रहते।

यों ही पंद्रह वर्ष बीत गए। पहलवान अजेय रहा। वह दंगल में अपने दोनों पुत्रों को लेकर उतरता था। पहलवान की सास पहले ही मर चुकी थी, पहलवान की स्त्री भी दो पहलवानों को पैदा करके स्वर्ग सिधार गई थी। दोनों लड़के पिता की तरह ही गठीले और तगड़े थे। दंगल में दोनों को देखकर लोगों के मुँह से अनायास ही निकल पड़ता–"वाह! बाप से भी बढ़कर निकलेंगे ऐ दोनों बेटे!"

दोनों ही लड़के राज-दरबार के भावी पहलवान घोषित हो चुके थे। अत: दोनों का भरण-पोषण दरबार से ही हो रहा था। प्रतिदिन प्रात:काल पहलवान स्वयं ढोलक बजा-बजाकर दोनों से कसरत करवाता। दोपहर में, लेटे-लेटे दोनों को सांसारिक ज्ञान की भी शिक्षा देता–"समझे! ढोलक की आवाज़ पर पूरा ध्यान देना। हाँ, मेरा गुरु कोई पहलवान नहीं, यही ढोल है, समझे! ढोल की आवाज़ के प्रताप से ही मैं पहलवान हुआ। दंगल में उतरकर सबसे पहले ढोलों को प्रणाम करना, समझे!"... ऐसी ही बहुत-सी बातें वह कहा करता। फिर मालिक को कैसे खुश रखा जाता है, कब कैसा व्यवहार करना चाहिए, आदि की शिक्षा वह नित्य दिया करता था।

किंतु उसकी शिक्षा-दीक्षा, सब किए-कराए पर एक दिन पानी फिर गया। वृद्ध राजा स्वर्ग सिधार गए। नए राजकुमार ने विलायत से आते ही राज्य को अपने हाथ में ले लिया। राजा साहब के समय शिथिलता आ गई थी, राजकुमार के आते ही दूर हो गई। बहुत से परिवर्तन हुए। उन्हीं परिवर्तनों की चपेटाघात में पड़ा पहलवान भी। दंगल का स्थान घोड़े की रेस ने लिया।

पहलवान तथा दोनों भावी पहलवानों का दैनिक भोजन-व्यय सुनते ही राजकुमार ने कहा–"टैरिबुल!"

नए मैनेजर साहब ने कहा–"हौरिबुल!"

पहलवान को साफ़ जवाब मिल गया, राज-दरबार में उसकी आवश्यकता नहीं। उसको गिड़गिड़ाने का भी मौका नहीं दिया गया।

उसी दिन वह ढोलक कंधे से लटकाकर, अपने दोनों पुत्रों के साथ अपने गाँव में लौट आया और वहीं रहने लगा। गाँव के एक छोर पर, गाँव वालों ने एक झोंपड़ी बाँध दी। वहीं रहकर वह गाँव के नौजवानों और चरवाहों को कुश्ती सिखाने लगा। खाने-पीने का खर्च गाँववालों की ओर से बँधा हुआ था। सुबह-शाम वह स्वयं ढोलक बजाकर अपने शिष्यों और पुत्रों को दाँव-पेंच वगैरा सिखाया करता था।

गाँव के किसान और खेतिहर-मज़दूर के बच्चे भला क्या खाकर कुश्ती सीखते! धीरे-धीरे पहलवान का स्कूल खाली पड़ने लगा। अंत में अपने दोनों पुत्रों को ही वह ढोलक बजा-बजाकर लड़ाता रहा-सिखाता रहा। दोनों लड़के दिन भर मज़दूरी करके जो कुछ भी लाते, उसी में गुज़र होती रही।

अकस्मात गाँव पर यह वज्रपात हुआ। पहले अनावृष्टि, फिर अन्न की कमी, तब मलेरिया और हैज़े ने मिलकर गाँव को भूनना शुरू कर दिया।

गाँव प्रायः सूना हो चला था। घर के घर खाली पड़ गए थे। रोज़ दो-तीन लाशें उठने लगीं। लोगों में खलबली मची हुई थी। दिन में तो-कलरव, हाहाकार तथा हृदय-विदारक रुदन के बावजूद भी लोगों के चेहरे पर कुछ प्रभा दृष्टिगोचर होती थी, शायद सूर्य के प्रकाश में सूर्योदय होते ही लोग काँखते-कूँखते-कराहते अपने-अपने घरों से बाहर निकलकर अपने पड़ोसियों और आत्मीयों को ढाढ़स देते थे–

"अरे क्या करोगी रोकर, दुलहिन! जो गया सो तो चला गया, वह तुम्हारा नहीं था; वह जो है उसको तो देखो।"

"भैया! घर में मुर्दा रखके कब तक रोओगे? कफ़न? कफ़न की क्या ज़रूरत है, दे आओ नदी में।" इत्यादि।

© NCERT not to be republished

किंतु, सूर्यास्त होते ही जब लोग अपनी-अपनी झोंपड़ियों में घुस जाते तो चूँ भी नहीं करते। उनकी बोलने की शक्ति भी जाती रहती थी। पास में दम तोड़ते हुए पुत्र को अंतिम बार 'बेटा!' कहकर पुकारने की भी हिम्मत माताओं की नहीं होती थी।

रात्रि की विभीषिका को सिर्फ़ पहलवान की ढोलक ही ललकारकर चुनौती देती रहती थी। पहलवान संध्या से सुबह तक, चाहे जिस खयाल से ढोलक बजाता हो, किंतु गाँव के अर्द्धमृत, औषधि-उपचार-पथ्य-विहीन प्राणियों में वह संजीवनी शक्ति ही भरती थी। बूढ़े-बच्चे-जवानों की शक्तिहीन आँखों के आगे दंगल का दृश्य नाचने लगता था। स्पंदन-शक्ति-शून्य स्नायुओं में भी बिजली दौड़ जाती थी। अवश्य ही ढोलक की आवाज़ में न तो बुखार हटाने का कोई गुण था और न महामारी की सर्वनाश शक्ति को रोकने की शक्ति ही, पर इसमें संदेह नहीं कि मरते हुए प्राणियों को आँख मूँदते समय कोई तकलीफ़ नहीं होती थी, मृत्यु से वे डरते नहीं थे।

जिस दिन पहलवान के दोनों बेटे क्रूर काल की चपेटाघात में पड़े, असह्य वेदना से छटपटाते हुए दोनों ने कहा था–"बाबा! उठा पटक दो वाला ताल बजाओ!"

'चटाक्-चट-धा, चटाक्-चट-धा...' सारी रात ढोलक पीटता रहा पहलवान। बीच-बीच में पहलवानों की भाषा में उत्साहित भी करता था।–"मारो बहादुर!"

प्रात:काल उसने देखा–उसके दोनों बच्चे ज़मीन पर निस्पंद पड़े हैं। दोनों पेट के बल पड़े हुए थे। एक ने दाँत से थोड़ी मिट्टी खोद ली थी। एक लंबी साँस लेकर पहलवान ने मुसकुराने की चेष्टा की थी–"दोनों बहादुर गिर पड़े!"

उस दिन पहलवान ने राजा श्यामानंद की दी हुई रेशमी जाँघिया पहन ली। सारे शरीर में मिट्टी मलकर थोड़ी कसरत की, फिर दोनों पुत्रों को कंधों पर लादकर नदी में बहा आया। लोगों ने सुना तो दंग रह गए। कितनों की हिम्मत टूट गई।

किंतु, रात में फिर पहलवान की ढोलक की आवाज़, प्रतिदिन की भाँति सुनाई पड़ी। लोगों की हिम्मत दुगुनी बढ़ गई। संतप्त पिता-माताओं ने कहा–"दोनों पहलवान बेटे मर गए, पर पहलवान की हिम्मत तो देखो, डेढ़ हाथ का कलेजा है!"

चार-पाँच दिनों के बाद। एक रात को ढोलक की आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। ढोलक नहीं बोली। पहलवान के कुछ दिलेर, किंतु रुग्ण शिष्यों ने प्रात:काल जाकर देखा–पहलवान की लाश 'चित' पड़ी है।

आँसू पोंछते हुए एक ने कहा–"गुरु जी कहा करते थे कि जब मैं मर जाऊँ तो चिता पर मुझे चित नहीं, पेट के बल सुलाना। मैं जिंदगी में कभी 'चित' नहीं हुआ। और चिता सुलगाने के समय ढोलक बजा देना।" वह आगे बोल नहीं सका।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. कुश्ती के समय ढोल की आवाज़ और लुट्टन के दाँव-पेंच में क्या तालमेल था? पाठ में आए ध्वन्यात्मक शब्द और ढोल की आवाज़ आपके मन में कैसी ध्वनि पैदा करते हैं, उन्हें शब्द दीजिए।
2. कहानी के किस-किस मोड़ पर लुट्टन के जीवन में क्या-क्या परिवर्तन आए?
3. लुट्टन पहलवान ने ऐसा क्यों कहा होगा कि मेरा गुरु कोई पहलवान नहीं, यही ढोल है?
4. गाँव में महामारी फैलने और अपने बेटों के देहांत के बावजूद लुट्टन पहलवान ढोल क्यों बजाता रहा?
5. ढोलक की आवाज़ का पूरे गाँव पर क्या असर होता था?
6. महामारी फैलने के बाद गाँव में सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य में क्या अंतर होता था?
7. कुश्ती या दंगल पहले लोगों और राजाओं का प्रिय शौक हुआ करता था। पहलवानों को राजा एवं लोगों के द्वारा विशेष सम्मान दिया जाता था–
   (क) ऐसी स्थिति अब क्यों नहीं है?
   (ख) इसकी जगह अब किन खेलों ने ले ली है?
   (ग) कुश्ती को फिर से प्रिय खेल बनाने के लिए क्या-क्या कार्य किए जा सकते हैं?
8. आशय स्पष्ट करें–
   आकाश से टूटकर यदि कोई भावुक तारा पृथ्वी पर जाना भी चाहता तो उसकी ज्योति और शक्ति रास्ते में ही शेष हो जाती थी। अन्य तारे उसकी भावुकता अथवा असफलता पर खिलखिलाकर हँस पड़ते थे।
9. पाठ में अनेक स्थलों पर प्रकृति का मानवीकरण किया गया है। पाठ में से ऐसे अंश चुनिए और उनका आशय स्पष्ट कीजिए।

पाठ के आसपास

1. पाठ में मलेरिया और हैज़े से पीड़ित गाँव की दयनीय स्थिति को चित्रित किया गया है। आप ऐसी किसी अन्य आपद स्थिति की कल्पना करें और लिखें कि आप ऐसी स्थिति का सामना कैसे करेंगे/करेंगी?
2. ***ढोलक की थाप मृत-गाँव में संजीवनी शक्ति भरती रहती थी***– कला से जीवन के संबंध को ध्यान में रखते हुए चर्चा कीजिए।
3. चर्चा करें– कलाओं का अस्तित्व व्यवस्था का मोहताज नहीं है।

© NCERT not to be republished

भाषा की बात

1. हर विषय, क्षेत्र, परिवेश आदि के कुछ विशिष्ट शब्द होते हैं। पाठ में कुश्ती से जुड़ी शब्दावली का बहुतायत प्रयोग हुआ है। उन शब्दों की सूची बनाइए। साथ ही नीचे दिए गए क्षेत्रों में इस्तेमाल होने वाले कोई पाँच-पाँच शब्द बताइए-
    - ***चिकित्सा***
    - ***क्रिकेट***
    - ***न्यायालय***
    - ***या अपनी पसंद का कोई क्षेत्र***
2. पाठ में अनेक अंश ऐसे हैं जो भाषा के विशिष्ट प्रयोगों की बानगी प्रस्तुत करते हैं। भाषा का विशिष्ट प्रयोग न केवल भाषाई सर्जनात्मकता को बढ़ावा देता है बल्कि कथ्य को भी प्रभावी बनाता है। यदि उन शब्दों, वाक्यांशों के स्थान पर किन्हीं अन्य का प्रयोग किया जाए तो संभवतः वह अर्थगत चमत्कार और भाषिक सौंदर्य उद्घाटित न हो सके। कुछ प्रयोग इस प्रकार हैं–
    - फिर बाज़ की तरह उस पर टूट पड़ा।
    - राजा साहब की स्नेह-दृष्टि ने उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लगा दिए।
    - पहलवान की स्त्री भी दो पहलवानों को पैदा करके स्वर्ग सिधार गई थी।

    इन विशिष्ट भाषा-प्रयोगों का प्रयोग करते हुए एक अनुच्छेद लिखिए।
3. जैसे क्रिकेट की कमेंट्री की जाती है वैसे ही इसमें कुश्ती की कमेंट्री की गई है? आपको दोनों में क्या समानता और अंतर दिखाई पड़ता है?

© NCERT not to be republished

12070CH15

विष्णु खरे 15

जन्म : *9 फ़रवरी सन् 1940, छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश)*

प्रमुख रचनाएँ : *एक गैर रूमानी समय में, खुद अपनी आँख से, सबकी आवाज़ के पर्दे में, पिछला बाकी (कविता-संग्रह); आलोचना की पहली किताब (आलोचना); सिनेमा पढ़ने के तरीके (सिने आलोचना); मरु प्रदेश और अन्य कविताएँ (टी. एस. इलियट), यह चाकू समय (ऑतिंला योझेफ), कालेवाला (फिनलैंड का राष्ट्रकाव्य)(अनुवाद)*

प्रमुख पुरस्कार : *रघुवीर सहाय सम्मान, हिंदी अकादमी (दिल्ली) का सम्मान, शिखर सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान, फिनलैंड का राष्ट्रीय सम्मान नाइट ऑफ़ दि ऑर्डर ऑफ़ दि व्हाइट रोज़*

मृत्यु : *19 सितंबर सन् 2018*

© NCERT not to be republished

हर कलाकृति जितनी वह पढ़ी जाती है, सुनाई या दिखाई देती है
उससे कहीं ज़्यादा होती है और फ़िल्म को लेकर शायद यह कुछ अधिक सत्य है।

समकालीन हिंदी कविता और आलोचना में विष्णु खरे एक विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। उन्होंने हिंदी जगत को अत्यंत गहरी विचारपरक कविताएँ दी हैं, तो साथ ही बेबाक आलोचनात्मक लेख भी दिए हैं। विश्व साहित्य का गहन अध्ययन उनके रचनात्मक और आलोचनात्मक लेखन में पूरी रंगत के साथ दिखलाई पड़ता है। विश्व सिनेमा के भी वे गहरे जानकार हैं और पिछले कई वर्षों से लगातार सिनेमा की विधा पर गंभीर लेखन करते रहे हैं। 1971–73 के अपने विदेश-प्रवास के दरम्यान उन्होंने तत्कालीन चेकोस्लोवाकिया की राजधानी ***प्राग*** *के प्रतिष्ठित फ़िल्म क्लब की सदस्यता प्राप्त कर संसार-भर की सैकड़ों उत्कृष्ट फ़िल्में देखीं। यहाँ से सिनेमा-लेखन को वैचारिक गरिमा और गंभीरता देने का उनका सफ़र शुरू हुआ। 'दिनमान', 'नवभारत टाइम्स', 'दि पायोनियर', 'दि हिंदुस्तान', 'जनसत्ता', 'दैनिक भास्कर', 'हंस', 'कथादेश', जैसी पत्र-पत्रिकाओं में उनका सिनेमा विषयक लेखन प्रकाशित होता रहा है। वे उन विशेषज्ञों में से हैं जिन्होंने फ़िल्म को समाज, समय और विचारधारा के आलोक*

में देखा तथा इतिहास, संगीत, अभिनय, निर्देशन की बारीकियों के सिलसिले में उसका विश्लेषण किया। अपने लेखन के द्वारा उन्होंने हिंदी के उस अभाव को थोड़ा भरने में सफलता पाई है, जिसके बारे में अपनी एक किताब की भूमिका में वे लिखते हैं– "यह ठीक है कि अब भारत में भी सिनेमा के महत्त्व और शास्त्रीयता को पहचान लिया गया है और उसके सिद्धांतकार भी उभर आए हैं लेकिन दुर्भाग्यवश जितना गंभीर काम हमारे सिनेमा पर यूरोप और अमेरिका में हो रहा है शायद उसका शतांश भी हमारे यहाँ नहीं है। हिंदी में सिनेमा के सिद्धांतों पर शायद ही कोई अच्छी मूल पुस्तक हो। हमारा लगभग पूरा समाज अभी भी सिनेमा जाने या देखने को एक हलके अपराध की तरह देखता है।"

विश्व-सिनेमा विश्व-साहित्य के समानांतर फल-फूल रहा है! दो महायुद्धों के बाद की दहशत, नव-स्वतंत्र देशों का नैतिक भूगोल, औपनिवेशिक दासता का मानसिक अवक्षेपण: विश्व सिनेमा जिस कौशल से ये विषय लगातार बिंबित करता रहा है– उसके विकास में चार्ली चैप्लिन नामक महान अभिनेता का बड़ा योगदान है। इसीलिए 'चार्ली चैप्लिन यानी हम सब' नामक पाठ इस महान अभिनेता के भीतर के इनसान को जानने का अवसर देता है।

साधारण की अपार धारण क्षमता और उसके धुआँते नायकत्व को अपने ढंग से चार्ली चैप्लिन से जुड़े नाटक और फ़िल्में पकड़ते रहे हैं। अपने यहाँ राजकपूर की ***आवारा, श्री 420, अनाड़ी*** *और* ***मेरा नाम जोकर*** *आदि फ़िल्में भी जिस तरह के* ***भोले सड़कछाप*** *की त्रासद-कामद गाथा रचती हैं, वह भी चार्ली चैप्लिन का ही प्रभाव है।*

हास्य फ़िल्मों के महान अभिनेता और निर्देशक चार्ली चैप्लिन पर लिखे गए इस पाठ में लेखक ने चार्ली के कलाकर्म की कुछ मूलभूत विशेषताओं को रेखांकित किया है। करुणा और हास्य के तत्वों का सामंजस्य, उनकी दृष्टि में, चार्ली की सबसे बड़ी विशेषता रही है। इसे देखते हुए भारत जैसे मुल्क में, जहाँ सिद्धांत और रचना दोनों स्तरों पर हास्य और करुणा के मेल की कोई परंपरा नहीं रही है, चार्ली चैप्लिन की लोकप्रियता यह तय करती है कि कला स्वतंत्र होती है बँधती नहीं। एक-से-एक हास्य कलाकार हुए, पर वे चैप्लिन की तरह हर देश, हर उम्र और हर स्तर के दर्शकों की पसंद नहीं बन पाए। इसका कारण शायद यह है कि चार्ली ही वह शख्सियत हो सकता है जिनमें सबको अपनी छवि दिखती है वे किसी भी संस्कृति को विदेशी नहीं लगते हैं। यह पूरा पाठ चार्ली चैप्लिन के इसी जादू की व्याख्या का एक प्रयास है।

© NCERT not to be republished

चार्ली चैप्लिन यानी हम सब

यदि यह वर्ष चैप्लिन की जन्मशती• का न होता तो भी चैप्लिन के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण वर्ष होता क्योंकि आज उनकी पहली फ़िल्म 'मेकिंग ए लिविंग' के 75वर्ष पूरे होते हैं। पौन शताब्दी से चैप्लिन की कला दुनिया के सामने है और पाँच पीढ़ियों को मुग्ध कर चुकी है। समय, भूगोल और संस्कृतियों की सीमाओं से खिलवाड़ करता हुआ चार्ली आज भारत के लाखों बच्चों को हँसा रहा है जो उसे अपने बुढ़ापे तक याद रखेंगे। पश्चिम में तो बार-बार चार्ली का पुनर्जीवन होता ही है, विकासशील दुनिया में जैसे-जैसे टेलीविज़न और वीडियो का प्रसार हो रहा है, एक बहुत बड़ा दर्शक वर्ग नए सिरे से चार्ली को घड़ी 'सुधारते' या जूते 'खाने' की कोशिश करते हुए देख रहा है। चैप्लिन की ऐसी कुछ फ़िल्में या इस्तेमाल न की गई रीलें भी मिली हैं जिनके बारे में कोई जानता न था। अभी चैप्लिन पर करीब 50 वर्षों तक काफ़ी कुछ कहा जाएगा।

1936 में बनी **मॉडर्न टाइम्स** फ़िल्म का एक दृश्य

•16 अप्रैल 1989 को इनके जन्म के सौ साल पूरे हो गए।

उनकी फ़िल्में भावनाओं पर टिकी हुई हैं, बुद्धि पर नहीं। 'मेट्रोपोलिस', 'दी कैबिनेट ऑफ़ डॉक्टर कैलिगारी', 'द रोवंथ सील', 'लास्ट इयर इन मारिएनबाड', 'द सैक्रिफाइस' जैसी फ़िल्में दर्शक से एक उच्चतर अहसास की माँग करती हैं। चैप्लिन का चमत्कार यही है कि उनकी फ़िल्मों को पागलखाने के मरीज़ों, विकल मस्तिष्क लोगों से लेकर आइन्स्टाइन जैसे महान प्रतिभा वाले व्यक्ति तक कहीं एक स्तर पर और कहीं सूक्ष्मतम रसास्वादन के साथ देख सकते हैं। चैप्लिन ने न सिर्फ़ फ़िल्म कला को लोकतांत्रिक बनाया बल्कि दर्शकों की वर्ग तथा वर्ण-व्यवस्था को तोड़ा। यह अकारण नहीं है कि जो भी व्यक्ति, समूह या तंत्र गैर बराबरी नहीं मिटाना चाहता वह अन्य संस्थाओं के अलावा चैप्लिन की फ़िल्मों पर भी हमला करता है। चैप्लिन भीड़ का वह बच्चा है जो इशारे से बतला देता है कि राजा भी उतना ही नंगा है जितना मैं हूँ और भीड़ हँस देती है। कोई भी शासक या तंत्र जनता का अपने ऊपर हँसना पसंद नहीं करता। एक परित्यक्ता, दूसरे दर्जे की स्टेज अभिनेत्री का बेटा होना, बाद में भयावह गरीबी और माँ के पागलपन से संघर्ष करना, साम्राज्य, औद्योगिक क्रांति, पूँजीवाद तथा सामंतशाही से मगरूर एक समाज द्वारा दुरदुराया जाना—इन सबसे चैप्लिन को वे जीवन-मूल्य मिले जो करोड़पति हो जाने के बावजूद अंत तक उनमें रहे। अपनी नानी की तरफ़ से चैप्लिन खानाबदोशों से जुड़े हुए थे और यह एक सुदूर रूमानी संभावना बनी हुई है कि शायद उस खानाबदोश औरत में भारतीयता रही हो क्योंकि यूरोप के जिप्सी भारत से ही गए थे– और अपने पिता की तरफ़ से वे यहूदीवंशी थे। इन जटिल परिस्थितियों ने चार्ली को हमेशा एक 'बाहरी', 'घुमंतू' चरित्र बना दिया। वे कभी मध्यवर्गी, बुर्जुआ या उच्चवर्गी जीवन-मूल्य न अपना सके। यदि उन्होंने अपनी फ़िल्मों में अपनी प्रिय छवि 'ट्रैम्प' (बद्दू, खानाबदोश, आवारागर्द) की प्रस्तुत की है तो उसके कारण उनके अवचेतन तक पहुँचते हैं।

चार्ली पर कई फ़िल्म समीक्षकों ने नहीं, फ़िल्म कला के उस्तादों और मानविकी के विद्वानों ने सिर धुने हैं और उन्हें नेति-नेति कहते हुए भी यह मानना

© NCERT not to be republished

पड़ता है कि चार्ली पर कुछ नया लिखना कठिन होता जा रहा हैं। दरअसल सिद्धांत कला को जन्म नहीं देते, कला स्वयं अपने सिद्धांत या तो लेकर आती है या बाद में उन्हें गढ़ना पड़ता है। जो करोड़ों लोग चार्ली को देखकर अपने पेट दुखा लेते हैं उन्हें मैल ओटिंगर या जेम्स एजी की बेहद सारगर्भित समीक्षाओं से क्या लेना-देना? वे चार्ली को समय और भूगोल से काट कर देखते हैं और जो देखते हैं उसकी ताकत अब तक ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। यह कहना कि वे चार्ली में खुद को देखते हैं दूर की कौड़ी लाना है लेकिन बेशक जैसा चार्ली वे देखते हैं वह उन्हें जाना-पहचाना लगता है, जिस मुसीबत में वह अपने को हर दसवें सेकेंड में डाल देता है वह सुपरिचित लगती है। अपने को नहीं लेकिन वे अपने किसी परिचित या देखे हुए को चार्ली मानने लगते हैं। कला में बेहतर क्या है– बुद्धि को प्रेरित करने वाली भावना या भावना को उकसाने वाली बुद्धि? उसने भावना को चुना और उसके कारण थे। बचपन की दो घटनाओं ने चैप्लिन पर गहरा, स्थायी प्रभाव डाला था। एक बार जब वे बीमार थे तब उनकी माँ ने उन्हें ईसा मसीह का जीवन बाइबिल से पढ़कर सुनाया था। ईसा के सूली पर चढ़ने के प्रकरण तक आते-आते माँ और चार्ली दोनों रोने लगे। अपनी आत्मकथा में चैप्लिन लिखते हैं :

'ओकले स्ट्रीट के तहखाने के उस अँधियारे कमरे में माँ ने मेरे सामने संसार की वह सबसे दयालु ज्योति उजागर की जिसने साहित्य और नाट्य को उनके महानतम और समृद्धतम विषय दिए हैं : स्नेह, करुणा और मानवता।'

दूसरी घटना भी कम मार्मिक नहीं है। बालक चार्ली उन दिनों एक ऐसे घर में रहता था जहाँ से कसाईखाना दूर नहीं था। वह रोज सैकड़ों जानवरों को वहाँ ले जाया जाता देखता था। एक बार एक भेड़ किसी तरह जान छुड़ाकर भाग निकली। उसे पकड़ने वाले उसका पीछा करते हुए कई बार फिसले, गिरे और पूरी सड़क पर ठहाके लगने लगे। आखिरकार उस गरीब जानवर को पकड़ लिया गया और उसे फिर कसाई के पास ले जाने लगे। तब चार्ली को अहसास हुआ कि उस भेड़ के साथ क्या होगा। वह रोता हुआ माँ के पास दौड़ा, 'उसे मार डालेंगे, उसे मार डालेंगे।' बाद में चैप्लिन ने अपनी आत्मकथा में लिखा: 'वसंत की वह बेलौस दोपहर और वह मज़ाकिया दौड़ कई दिनों तक मेरे साथ रही; और मैं कई बार सोचता हूँ कि उस घटना ही ने तो कहीं मेरी भावी फ़िल्मों की भूमि तय नहीं कर दी थी– त्रासदी और हास्योत्पादक तत्वों के सामंजस्य की।'

भारतीय कला और सौंदर्यशास्त्र को कई रसों का पता है, उनमें से कुछ रसों का किसी कलाकृति में साथ-साथ पाया जाना श्रेयस्कर भी माना गया है, जीवन में हर्ष और विषाद आते रहते हैं यह संसार की सारी सांस्कृतिक परंपराओं को मालूम है, लेकिन करुणा का हास्य में बदल जाना एक ऐसे रस-सिद्धांत की माँग करता है जो भारतीय परंपराओं में नहीं मिलता। 'रामायण' तथा 'महाभारत' में जो हास्य है वह 'दूसरों' पर है और अधिकांशतः

वह परसंताप से प्रेरित है। जो करुणा है वह अकसर सद्‌व्यक्तियों के लिए और कभी-कभार दुष्टों के लिए है। संस्कृत नाटकों में जो विदूषक है वह राजव्यक्तियों से कुछ बदतमीजियाँ अवश्य करता है, किंतु करुणा और हास्य का सामंजस्य उसमें भी नहीं है। अपने ऊपर हँसने और दूसरों में भी वैसा ही माद्दा पैदा करने की शक्ति भारतीय विदूषक में कुछ कम ही नज़र आती है।

इसलिए भारत में चैप्लिन के इतने व्यापक स्वीकार का एक अलग सौंदर्यशास्त्रीय महत्त्व तो है ही, भारतीय जनमानस पर उसने जो प्रभाव डाला होगा उसका पर्याप्त मूल्यांकन शायद अभी होने को है। हास्य कब करुणा में बदल जाएगा और करुणा कब हास्य में परिवर्तित हो जाएगी इससे पारंपरिक या सैद्धांतिक रूप से अपरिचित भारतीय जनता ने उस 'फ़िनोमेनन' को यूँ स्वीकार किया जैसे बत्तख पानी को स्वीकारती है। किसी 'विदेशी' कला-सिद्धांत को इतने स्वाभाविक रूप से पचाने से अलग ही प्रश्न खड़े होते हैं और अंशतः एक तरह की कला की सार्वजनिकता को ही रेखांकित करते हैं।

किसी भी समाज में इने-गिने लोगों को 'अमिताभ बच्चन' या 'दिलीप कुमार' कहकर ताना दिया जाता है लेकिन किसी भी व्यक्ति को परिस्थितियों का औचित्य देखते हुए 'चार्ली' या 'जानी वॉकर' कह दिया जाता है। यह स्वयं एक स्वीकारोक्ति है कि हमारे बीच 'नायक' कम हैं जबकि हर व्यक्ति दूसरे को कभी-न-कभी विदूषक समझता है। दरअसल मनुष्य स्वयं ईश्वर या नियति का विदूषक, क्लाउन, जोकर या साइड-किक है। यह अकारण नहीं है कि महात्मा गांधी से चार्ली चैप्लिन का खासा पुट था और गांधी तथा नेहरू दोनों ने कभी चार्ली का सान्निध्य चाहा था।

गांधी जी और चार्ली चैप्लिन डॉ. कटियाल के निवास स्थान पर कैनिंग टाउन में, 22 सितंबर 1931

चार्ली के नितांत अभारतीय सौंदर्यशास्त्र की इतनी व्यापक स्वीकृति देखकर राजकपूर ने भारतीय फ़िल्मों का एक सबसे साहसिक प्रयोग किया। 'आवारा' सिर्फ़ 'दि ट्रैम्प' का शब्दानुवाद ही नहीं था बल्कि चार्ली का

भारतीयकरण ही था। वह अच्छा ही था कि राजकपूर ने चैप्लिन की नकल करने के आरोपों की परवाह नहीं की। राजकपूर के 'आवारा' और 'श्री 420' के पहले फ़िल्मी नायकों पर हँसने की और स्वयं नायकों के अपने पर हँसने की परंपरा नहीं थी। 1953-57 के बीच जब चैप्लिन अपनी गैर-ट्रैम्पनुमा अंतिम फ़िल्में बना रहे थे तब राजकपूर चैप्लिन का युवा अवतार ले रहे थे। फिर तो दिलीप कुमार (बाबुल, शबनम, कोहिनूर, लीडर, गोपी), देव आनंद (नौ दो ग्यारह, फ़ंटूश, तीन देवियाँ), शम्मी कपूर, अमिताभ बच्चन (अमर अकबर एंथनी) तथा श्रीदेवी तक किसी-ना-किसी रूप से चैप्लिन का कर्ज़ स्वीकार कर चुके हैं। बुढ़ापे में जब अर्जुन अपने दिवंगत मित्र कृष्ण की पत्नियों को डाकुओं से न बचा सके और हवा में तीर चलाते रहे तो यह दृश्य करुण और हास्योत्पादक दोनों था किंतु महाभारत में सिर्फ़ उसकी त्रासद व्याख्या स्वीकार की गई। आज फ़िल्मों में किसी नायक को झाड़ुओं से पिटता भी दिखाया जा सकता है लेकिन हर बार हमें चार्ली की ही ऐसी फ़जीहतें याद आती हैं।

चार्ली की अधिकांश फ़िल्में भाषा का इस्तेमाल नहीं करतीं इसलिए उन्हें ज़्यादा-से-ज़्यादा मानवीय होना पड़ा। सवाक् चित्रपट पर कई बड़े-बड़े कॉमेडियन हुए हैं, लेकिन वे चैप्लिन की सार्वभौमिकता तक क्यों नहीं पहुँच पाए इसकी पड़ताल अभी होने को है। चार्ली का चिर-युवा होना या बच्चों जैसा दिखना एक विशेषता तो है ही, सबसे बड़ी विशेषता शायद यह है कि वे किसी भी संस्कृति को विदेशी नहीं लगते। यानी उनके आसपास जो भी चीज़ें, अड़ंगे, खलनायक, दुष्ट औरतें आदि रहते हैं वे एक सतत 'विदेश' या 'परदेस' बन जाते हैं और चैप्लिन 'हम' बन जाते हैं। चार्ली के सारे संकटों में हमें यह भी लगता है कि यह 'मैं' भी हो सकता हूँ, लेकिन 'मैं' से ज़्यादा चार्ली हमें 'हम' लगते हैं। यह संभव है कि कुछ अर्थों में 'बस्टर कीटन' चार्ली चैप्लिन से बड़ी हास्य-प्रतिभा हो लेकिन कीटन हास्य का काफ्का है जबकि चैप्लिन प्रेमचंद के ज़्यादा नज़दीक हैं।

एक होली का त्योहार छोड़ दें तो भारतीय परंपरा में व्यक्ति के अपने पर हँसने, स्वयं को जानते-बूझते हास्यास्पद बना डालने की परंपरा नहीं के बराबर है। गाँवों और लोक-संस्कृति में तब भी वह शायद हो, नागर-सभ्यता में तो वह थी नहीं। चैप्लिन का भारत में महत्त्व यह है कि वह 'अंग्रेज़ों जैसे' व्यक्तियों पर हँसने का अवसर देते हैं। चार्ली स्वयं पर सबसे ज़्यादा तब हँसता है जब वह स्वयं को गर्वोन्मत्त, आत्म-विश्वास से लबरेज़, सफलता, सभ्यता, संस्कृति तथा समृद्धि की प्रतिमूर्ति, दूसरों से ज़्यादा शक्तिशाली तथा श्रेष्ठ, अपने 'वज्रादपि कठोराणि' अथवा 'मृदुनि कुसुमादपि' क्षण में दिखलाता है। तब यह समझिए कि कुछ ऐसा हुआ ही चाहता है कि यह सारी गरिमा सुई-चुभे गुब्बारे जैसी फुस्स हो उठेगी।

अपने जीवन के अधिकांश हिस्सों में हम चार्ली के टिली ही होते हैं जिसके रोमांस हमेशा पंक्चर होते रहते हैं। हमारे महानतम क्षणों में कोई भी हमें चिढ़ाकर या लात मारकर

भाग सकता है। अपने चरमतम शूरवीर क्षणों में हम क्लैब्य और पलायन के शिकार हो सकते हैं। कभी-कभार लाचार होते हुए जीत भी सकते हैं। मूलत: हम सब चार्ली हैं क्योंकि हम सुपरमैन नहीं हो सकते। सत्ता, शक्ति, बुद्धिमत्ता, प्रेम और पैसे के चरमोत्कर्षों में जब हम आईना देखते हैं तो चेहरा चार्ली-चार्ली हो जाता है।

अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक ने ऐसा क्यों कहा है कि अभी चैप्लिन पर करीब 50 वर्षों तक काफ़ी कुछ कहा जाएगा?
2. *चैप्लिन ने न सिर्फ़ फ़िल्म-कला को लोकतांत्रिक बनाया बल्कि दर्शकों की वर्ग तथा वर्ण-व्यवस्था को तोड़ा* । इस पंक्ति में लोकतांत्रिक बनाने का और वर्ण-व्यवस्था तोड़ने का क्या अभिप्राय है? क्या आप इससे सहमत हैं?
4. लेखक ने चार्ली का भारतीयकरण किसे कहा और क्यों? गांधी और नेहरू ने भी उनका सान्निध्य क्यों चाहा?
5. लेखक ने कलाकृति और रस के संदर्भ में किसे श्रेयस्कर माना है और क्यों? क्या आप कुछ ऐसे उदाहरण दे सकते हैं जहाँ कई रस साथ-साथ आए हों?
6. जीवन की जद्दोजहद ने चार्ली के व्यक्तित्व को कैसे संपन्न बनाया?
7. चार्ली चैप्लिन की फ़िल्मों में निहित त्रासदी/करुणा/हास्य का सामंजस्य भारतीय कला और सौंदर्यशास्त्र की परिधि में क्यों नहीं आता?
8. चार्ली सबसे ज़्यादा स्वयं पर कब हँसता है?

पाठ के आसपास

1. आपके विचार से मूक और सवाक् फ़िल्मों में से किसमें ज़्यादा परिश्रम करने की आवश्यकता है और क्यों?
2. सामान्यत: व्यक्ति अपने ऊपर नहीं हँसते, दूसरों पर हँसते हैं। कक्षा में ऐसी घटनाओं का ज़िक्र कीजिए जब–
   (क) आप अपने ऊपर हँसे हों;
   (ख) हास्य करुणा में या करुणा हास्य में बदल गई हो।
3. ***चार्ली हमारी वास्तविकता है, जबकि सुपरमैन स्वप्न*** आप इन दोनों में खुद को कहाँ पाते हैं?

© NCERT not to be republished

4. भारतीय सिनेमा और विज्ञापनों ने चार्ली की छवि का किन-किन रूपों में उपयोग किया हैं? कुछ फ़िल्में (जैसे आवारा, श्री 420, मेरा नाम जोकर, मिस्टर इंडिया और विज्ञापनों (जैसे चैरी ब्लॉसम) को गौर से देखिए और कक्षा में चर्चा कीजिए।

5. आजकल विवाह आदि उत्सव, समारोहों एवं रेस्तराँ में आज भी चार्ली चैप्लिन का रूप धरे किसी व्यक्ति से आप अवश्य टकराए होंगे। सोचकर बताइए कि बाज़ार ने चार्ली चैप्लिन का कैसा उपयोग किया है?

© NCERT not to be republished

भाषा की बात

1. ***... तो चेहरा चार्ली-चार्ली हो जाता है।*** वाक्य में ***चार्ली*** शब्द की पुनरुक्ति से किस प्रकार की अर्थ-छटा प्रकट होती है? इसी प्रकार के पुनरुक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए कोई तीन वाक्य बनाइए। यह भी बताइए कि संज्ञा किन स्थितियों में विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने लगती है?
2. नीचे दिए वाक्यांशों में हुए भाषा के विशिष्ट प्रयोगों को पाठ के संदर्भ में स्पष्ट कीजिए।
   (क) सीमाओं से खिलवाड़ करना
   (ख) समाज से दुरदुराया जाना
   (ग) सुदूर रूमानी संभावना
   (घ) सारी गरिमा सुई-चुभे गुब्बारे जैसी फुस्स हो उठेगी।
   (ङ) जिसमें रोमांस हमेशा पंक्चर होते रहते हैं।

गौर करें

(क) दरअसल सिद्धांत कला को जन्म नहीं देते, कला स्वयं अपने सिद्धांत या तो लेकर आती है या बाद में उन्हें गढ़ना पड़ता है।

(ख) कला में बेहतर क्या है– बुद्धि को प्रेरित करने वाली भावना या भावना को उकसाने वाली बुद्धि?

(ग) दरअसल मनुष्य स्वयं ईश्वर या नियति का विदूषक, क्लाउन, जोकर या साइड किक है।

(घ) सत्ता, शक्ति, बुद्धिमता, प्रेम और पैसे के चरमोत्कर्ष में जब हम आईना देखते हैं तो चेहरा चार्ली-चार्ली हो जाता है।

(ङ) मॉडर्न टाइम्स ***द ग्रेट डिक्टेटर*** आदि फ़िल्में कक्षा में दिखाई जाएँ और फ़िल्मों में चार्ली की भूमिका पर चर्चा की जाए।

शब्द-छवि

फ़िनोमेनन	-	तथ्य
बज्रादपि कठोराणि	-	वज्र से भी कठोर
मृदूनि कुसुमादपि	-	फूल से भी कोमल

© NCERT
not to be republished

12070CH16

रज़िया सज्जाद ज़हीर 16

__जन्म :__ 15 फ़रवरी, सन् 1917, अजमेर (राजस्थान)
__प्रमुख रचनाएँ :__ ज़र्द गुलाब (उर्दू कहानी संग्रह)
__सम्मान :__ सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार, उर्दू अकादेमी, उत्तर-प्रदेश, अखिल भारतीय लेखिका संघ अवार्ड
__निधन :__ 18 दिसंबर, सन् 1979

हमारे दृढ़ संकल्प ही हमारी ताकत हैं,
हमारा लिखना ही हमें ज़िंदा रखता है।

© NCERT not to be republished

रज़िया सज्जाद ज़हीर मूलत: उर्दू की कथाकार हैं। उन्होंने बी.ए. तक की शिक्षा घर पर रहकर ही प्राप्त की। विवाह के बाद उन्होंने इलाहाबाद से उर्दू में एम.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। सन् 1947 में वे अज़मेर से लखनऊ आईं और वहाँ करामत हुसैन गर्ल्स कॉलेज में पढ़ाने लगीं। सन् 1965 में उनकी नियुक्ति सोवियत सूचना विभाग में हुई।

आधुनिक उर्दू कथा-साहित्य में उनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने कहानी और उपन्यास दोनों लिखे हैं, उर्दू में बाल-साहित्य की रचना भी की है। मौलिक सर्जन के साथ-साथ उन्होंने कई अन्य भाषाओं से उर्दू में कुछ पुस्तकों के अनुवाद भी किए हैं। रज़िया जी की भाषा सहज, सरल और मुहावरेदार है। उनकी कुछ कहानियाँ देवनागरी में भी लिप्यांतरित हो चुकी हैं।

रज़िया सज्जाद ज़हीर की कहानियों में सामाजिक सद्‌भाव, धार्मिक सहिष्णुता और आधुनिक संदर्भों में बदलते हुए पारिवारिक मूल्यों को उभारने का सफल प्रयास मिलता है। सामाजिक यथार्थ और मानवीय गुणों का सहज सामंजस्य उनकी कहानियों की विशेषता है।

रज़िया सज्जाद ज़हीर

रज़िया सज्जाद ज़हीर की ***नमक*** *शीर्षक कहानी भारत-पाक विभाजन के बाद सरहद के दोनों तरफ़ के विस्थापित पुनर्वासित जनों के दिलों को टटोलती एक मार्मिक कहानी है। दिलों को टटोलने की इस कोशिश में अपने-पराए, देस-परदेस की कई प्रचलित धारणाओं पर सवाल खड़े किए गए हैं। विस्थापित होकर आई सिख बीबी आज भी लाहौर को ही अपना वतन मानती हैं और सौगात के तौर पर वहाँ का नमक लाए जाने की फ़रमाइश करती हैं। कस्टम अधिकारी नमक ले जाने की इजाज़त देते हुए (जिसे ले जाना गैरकानूनी है) देहली को अपना वतन बताता है। इसी तरह भारतीय कस्टम अधिकारी* ***सुनील दासगुप्त*** *का कहना है, "मेरा वतन ढाका है। राष्ट्र-राज्यों की नयी सीमा-रेखाएँ खींची जा चुकी हैं और मज़हबी आधार पर लोग इन रेखाओं के इधर-उधर अपनी जगहें मुकर्रर कर चुके हैं, इसके बावजूद ज़मीन पर खींची गई रेखाएँ उनके अंतर्मन तक नहीं पहुँच पाई हैं। (राजनीतिक यथार्थ के स्तर पर उनके वतन की पहचान बदल चुकी है, किंतु यह उनका हार्दिक यथार्थ नहीं बन पाया है।) एक अनचाही, अप्रीतिकर बाहरी बाध्यता ने उन्हें अपने-अपने जन्म-स्थानों से विस्थापित तो कर दिया है, पर वह उनके दिलों पर कब्ज़ा नहीं कर पाई है। नमक जैसी छोटी-सी चीज़ का सफ़र पहचान के इस हार्दिक पहलू को परत-दर-परत उघाड़ देता है। यह हार्दिक पहलू जब तक सरहद के आर-पार जीवित है, तब तक यह उम्मीद की जा सकती है कि राजनीतिक सरहदें एक दिन बेमानी हो जाएँगी। लाहौर के कस्टम अधिकारी का यह कथन बहुत सारगर्भित है—उनको यह नमक देते वक्त मेरी तरफ़ से कहिएगा कि लाहौर अभी तक उनका वतन है और देहली मेरा, तो बाकी सब रफ़्ता-रफ़्ता ठीक हो जाएगा।*

इसे पढ़ते हुए एक सवाल हमारे मन में ज़रूर उठ सकता है—क्या धर्म-मज़हब के आधार पर नयी सरहदों के आर-पार फेंक दिए गए लोगों की वह पीढ़ी जिनके दिलों में अपनी जन्म-स्थली के प्रति गहरा लगाव है, के खत्म हो जाने पर "रफ़्ता-रफ़्ता ठीक हो जाने" की उम्मीद भी खत्म हो जाएगी? क्या नयी पीढ़ी के आने पर भी यह उम्मीद बनी रहेगी?

© NCERT not to be republished

नमक

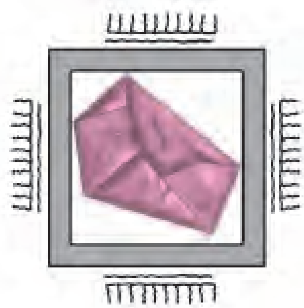

उन सिख बीबी को देखकर सफ़िया हैरान रह गई थी, किस कदर वह उसकी माँ से मिलती थी। वही भारी भरकम जिस्म, छोटी-छोटी चमकदार आँखें, जिनमें नेकी, मुहब्बत और रहमदिली की रोशनी जगमगाया करती थी। चेहरा जैसे कोई खुली हुई किताब। वैसा ही सफ़ेद बारीक मलमल का दुपट्टा जैसा उसकी अम्मा मुहर्रम में ओढ़ा करती थी।

जब सफ़िया ने कई बार उनकी तरफ़ मुहब्बत से देखा तो उन्होंने भी उसके बारे में घर की बहू से पूछा। उन्हें बताया गया कि ये मुसलमान हैं। कल ही सुबह लाहौर जा रही हैं अपने भाइयों से मिलने, जिन्हें इन्होंने कई साल से नहीं देखा। लाहौर का नाम सुनकर वे उठकर सफ़िया के पास आ बैठीं और उसे बताने लगीं कि उनका लाहौर कितना प्यारा शहर है। वहाँ के लोग कैसे खूबसूरत होते हैं, उम्दा खाने और नफ़ीस कपड़ों के शौकीन, सैर-सपाटे के रसिया, ज़िंदादिली की तसवीर।

कीर्तन होता रहा। वे आहिस्ता-आहिस्ता बातें करती रहीं। सफ़िया ने दो-एक बार बीच में पूछा भी,“माता जी, आपको तो यहाँ आए बहुत साल हो गए होंगे।” “हाँ बेटी! जब हिंदुस्तान बना था तभी आए थे। वैसे तो अब यहाँ भी हमारी कोठी बन गई है। बिज़नेस है, सब ठीक ही है, पर लाहौर बहुत याद आता है। हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।”

फिर पलकों से कुछ सितारे टूटकर दूधिया आँचल में समा जाते हैं। बात आगे चल पड़ती, मगर घूम-फिरकर फिर उसी जगह पर आ जाती--‘साडा लाहौर’!

कीर्तन कोई ग्यारह बजे खत्म हुआ। जब वे प्रसाद हाथ में लिए उठने लगीं और साफ़िया के सलाम के जवाब में दुआएँ देती हुई रुखसत होने लगीं तब सफ़िया ने धीमे से पूछा, “आप लाहौर से कोई सौगात मँगाना चाहें तो मुझे हुक्म दीजिए।”

वे दरवाज़े से लगी खड़ी थीं। हिचकिचाकर बहुत ही आहिस्ता से बोलीं, “अगर ला सको तो थोड़ा-सा लाहौरी नमक लाना।”

पंद्रह दिन यों गुज़रे कि पता ही नहीं चला। जिमखाना की शामें, दोस्तों की मुहब्बत, भाइयों की खातिरदारियाँ–उनका बस न चलता था कि बिछुड़ी हुई परदेसी बहिन के लिए क्या कुछ न कर दें! दोस्तों, अज़ीज़ों की यह हालत कि कोई कुछ लिए आ रहा है, कोई

© NCERT not to be republished

कुछ। कहाँ रखें, कैसे पैक करें, क्यों कर ले जाएँ–एक समस्या थी। सबसे बड़ी समस्या थी बादामी कागज़ की एक पुड़िया की जिसमें कोई सेर भर लाहौरी नमक था।

सफ़िया का भाई एक बहुत बड़ा पुलिस अफ़सर था। उसने सोचा कि वह ठीक राय दे सकेगा। चुपके से पूछने लगी, "क्यों भैया, नमक ले जा सकते हैं?"

वह हैरान होकर बोला, "नमक? नमक तो नहीं ले जा सकते, गैरकानूनी है और... और नमक का आप क्या करेंगी? आप लोगों के हिस्से में तो हमसे बहुत ज़्यादा नमक आया है।"

वह झुँझला गई, "मैं हिस्से-बखरे की बात नहीं कर रही हूँ, आया होगा। मुझे तो लाहौर का नमक चाहिए, मेरी माँ ने यही मँगवाया है।"

भाई की समझ में कुछ नहीं आया। माँ का क्यों ज़िक्र था, वे तो बँटवारे से पहले ही मर चुकी थीं।

ज़रा नरमी से समझाने के अंदाज़ में बोला, "देखिए बाजी! आपको कस्टम से गुज़रना है और अगर एक भी चीज़ ऐसी-वैसी निकल आई तो आपके सामान की चिंदी-चिंदी बिखेर देंगे कस्टमवाले। कानून जो..."

वह बिगड़कर बोलीं, "निकल आने का क्या मतलब, मैं क्या चोरी से ले जाऊँगी? छिपा के ले जाऊँगी? मैं तो दिखा के, जता के ले जाऊँगी?"

"भई, यह तो आप बहुत ही गलत बात करेंगी।... कानून...।"

"अरे, फिर वही कानून-कानून कहे जाते हो! क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं, कुछ मुहब्बत, मुरौवत, आदमियत, इंसानियत के नहीं होते? आखिर कस्टमवाले भी इंसान होते हैं, कोई मशीन तो नहीं होते।"

"हाँ, वे मशीन तो नहीं होते, पर मैं आपको यकीन दिलाता हूँ वे शायर भी नहीं होते। उनको तो अपनी ड्यूटी करनी होती हैं।"

"अरे बाबा, तो मैं कब कह रही हूँ कि वह ड्यूटी न करें। एक तोहफ़ा है, वह भी चंद पैसों का, शौक से देख लें, कोई सोना-चाँदी नहीं, स्मगल की हुई चीज़ नहीं, ब्लैक मार्केट का माल नहीं।"

"अब आपसे कौन बहस करे। आप अदीब ठहरीं और सभी अदीबों का दिमाग थोड़ा-सा तो ज़रूर ही घूमा हुआ होता है। वैसे मैं आपको बताए देता हूँ कि आप ले नहीं जा पाएँगी और बदनामी मुफ़्त में हम सबकी भी होगी। आखिर आप कस्टमवालों को कितना जानती हैं?"

उसने गुस्से से जवाब दिया, "कस्टमवालों को जानें या न जानें, पर हम इंसानों को थोड़ा-सा ज़रूर जानते हैं। और रही दिमाग की बात सो अगर सभी लोगों का दिमाग हम अदीबों की तरह घूमा हुआ होता तो यह दुनिया कुछ बेहतर ही जगह हो जाती, भैया।"

© NCERT not to be republished

मारे गुस्से के उसकी आँखों से आँसू बहने लगे थे। उसका भाई सिर हिलाकर चुप हो गया।

अगले रोज़ दो बजे दिन को उसे रवाना होना था। सुबह के लिए बहुत व्यस्त कार्यक्रम बन चुका था, इसलिए उसे सारी पैकिंग रात ही को करनी थी। कमरे का दरवाज़ा अंदर से बंद करके वह सामान बाँधने लगी। इधर-उधर फैली हुई चीज़ें धीरे-धीरे सिमटकर सूटकेस और बिस्तरबंद में चली गईं। सिर्फ़ दो चीज़ें रह गईं। एक तो वह छोटी-सी टोकरी जिसमें कीनू थे, एक दोस्त का तोहफ़ा–संतरे और माल्टे को मिलाकर पैदा किया गया फल, माल्टे की तरह रंगीन और मीठा, संतरे की तरह नाज़ुक। और दूसरी थी वह नमक की पुड़िया।

अब तक सफ़िया का गुस्सा उतर चुका था। भावना के स्थान पर बुद्धि धीरे-धीरे उस पर हावी हो रही थी। नमक की पुड़िया ले तो जानी है, पर कैसे? अच्छा, अगर इसे हाथ में ले लें और कस्टमवालों के सामने सबसे पहले इसी को रख दें? लेकिन अगर कस्टमवालों ने न जाने दिया! तो मज़बूरी है, छोड़ देंगे। लेकिन फिर उस वायदे का क्या होगा जो हमने अपनी माँ से किया था? हम अपने को सैयद कहते हैं। फिर वायदा करके झुठलाने के क्या मायने? जान देकर भी वायदा पूरा करना होगा। मगर कैसे? अच्छा, अगर इसे कीनुओं की टोकरी में सबसे नीचे रख लिया जाए तो इतने कीनुओं के ढेर में भला कौन इसे देखेगा? और अगर देख लिया? नहीं जी, फलों की टोकरियाँ तो आते वक्त भी किसी की नहीं देखी जा रही थीं। उधर से केले, इधर से कीनू सब ही ला रहे थे, ले जा रहे थे। यही ठीक है, फिर देखा जाएगा।

उसने कीनू कालीन पर उलट दिए। टोकरी खाली की और नमक की पुड़िया उठाकर टोकरी की तह में रख दी। एक बार झाँककर उसने पुड़िया को देखा और उसे ऐसा महसूस हुआ मानो उसने अपनी किसी प्यारे को कब्र की गहराई में उतार दिया हो! कुछ देर उकड़ूँ बैठी वह पुड़िया को तकती रही और उन कहानियों को याद करती रही जिन्हें वह अपने बचपन में अम्मा से सुना करती थी, जिनमें शहजादा अपनी रान चीरकर हीरा छिपा लेता था और देवों, खौफ़नाक भूतों तथा राक्षसों के सामने से होता हुआ सरहदों से गुज़र जाता था। इस ज़माने में ऐसी कोई तरकीब नहीं हो सकती थी वरना वह अपना दिल चीरकर उसमें यह नमक छिपा लेती। उसने एक आह भरी।

फिर वह कीनुओं को एक-एक करके टोकरी में रखने लगी, पुड़िया के इधर-उधर, आसपास और फिर ऊपर, यहाँ तक कि वह बिलकुल छिप गई। आश्वस्त होकर उसने हाथ झाड़े, सूटकेस पलंग के नीचे खिसकाया, टोकरी उठाकर पलंग के सिरहाने रखी, और लेटकर दोहर ओढ़ ली।

रात को तकरीबन डेढ़ बजे थे। मार्च की सुहानी हवा खिड़की की जाली से आ रही थी। बाहर चाँदनी साफ़ और ठंडी थी। खिड़की के करीब लगा चंपा का एक घना दरख्त

© NCERT not to be republished

सामने की दीवार पर पत्तियों के अक्स लहका रहा था। कभी किसी तरफ़ से किसी की दबी हुई खाँसी की आहट, दूर से किसी कुत्ते के भौंकने या रोने की आवाज़, चौकीदार की सीटी और फिर सन्नाटा! यह पाकिस्तान था। यहाँ उसके तीन सगे भाई थे, बेशुमार चाहनेवाले दोस्त थे, बाप की कब्र थी, नन्हे-नन्हे भतीजे-भतीजियाँ थीं जो उससे बड़ी मासूमियत से पूछते, ''फूफ़ीजान, आप हिंदुस्तान में क्यों रहती हैं, जहाँ हम लोग नहीं आ सकते।'' उन सबके और सफ़िया के बीच में एक सरहद थी और बहुत ही नोकदार लोहे की छड़ों का जंगला, जो कस्टम कहलाता था।

कल वह लाहौर से चली जाएगी। हो सकता है, सालभर बाद फिर आए। एक साल से पहले तो वह आ भी नहीं सकती थी और यह भी हो सकता था कि अब कभी न आ सके।

उसकी आँखें आहिस्ता-आहिस्ता बंद होने लगीं। फिर उसे एक सफ़ेद दुपट्टे का दूधिया आँचल लहराता दिखाई देने लगा, जिस पर यहाँ-वहाँ सितारे झिलमिला रहे थे—हमें वहाँ से आए तो बहुत दिन हो गए, यहाँ हमारी कोठी भी है, बिज़नेस भी, हम यहाँ बस भी गए हैं, पर हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।

फिर दिखा इकबाल का मकबरा, लाहौर का किला, किले के पीछे डूबते हुए सूरज की नारंगी किरणें, आसपास से फैलता-उभरता अँधेरा, उस रंगीन अँधेरे में बहती हुई नरम हवा। उस हवा में रची हुई मौलसिरी की खुशबू और मकबरे की सीढ़ियों पर बैठे हुए दो इंसान—सिर झुकाए चुपचाप, उदास, जैसे दो बेजान परछाइयाँ।

"तो तुम कल चली जाओगी?"

"हाँ!"

"अब कब आओगी?"

"मालूम नहीं, शायद अगले साल। शायद कभी नहीं।"

अचानक उसकी आँखें खुल गईं। शायद उसने मकबरे की सीढ़ियों के नीचे लगी दूब से एक पत्ती तोड़ी थी जिस पर ठंडी ओस जमनी शुरू हो गई थी। हुआ यह था कि नींद में करवट लेते हुए उसका हाथ कीनुओं से लबालब भरी टोकरी पर जा पड़ा था—रसीले, ठंडे कीनू जिनको देते वक्त उसके दोस्त ने कहा था, "यह हिंदुस्तान-पाकिस्तान की एकता का मेवा है।"

सफ़िया फ़र्स्ट क्लास के वेटिंग रूम में बैठी थी। देहली तक का किराया उसके भाई ने दिया था। वह हाथ में टिकट दबाए वेटिंग रूम के बाहर प्लेटफार्म पर टहल रहा था।

वह अंदर बैठी चाय की प्याली हाथ में लिए कीनुओं की टोकरी पर निगाहें जमाए यह सोच रही थी कि आसपास, इधर-उधर इतने लोग हैं, लेकिन सिर्फ़ वही जानती है कि टोकरी की तह में कीनुओं के नीचे नमक की पुड़िया है।

© NCERT not to be republished

जब उसका सामान कस्टम पर जाँच के लिए बाहर निकाला जाने लगा तो उसे एक झिरझिरी-सी आई और एकदम से उसने फ़ैसला किया कि मुहब्बत का यह तोहफ़ा चोरी से नहीं जाएगा, नमक कस्टमवालों को दिखाएगी वह। उसने जल्दी से पुड़िया निकाली और हैंडबैग में रख ली, जिसमें उसका पैसों का पर्स और पासपोर्ट आदि थे। जब सामान कस्टम से होकर रेल की तरफ़ चला तो वह एक कस्टम अफ़सर की तरफ़ बढ़ी। ज़्यादातर मेज़ें खाली हो चुकी थीं। एक-दो पर इक्का-दुक्का सामान रखा था। वहीं एक साहब खड़े थे-लंबा कद, दुबला-पतला जिस्म, खिचड़ी बाल, आँखों पर ऐनक। वे कस्टम अफ़सर की वर्दी पहने तो थे मगर उन पर वह कुछ जँच नहीं रही थी। सफ़िया कुछ हिचकिचाकर बोली, "मैं आपसे कुछ पूछना चाहती हूँ।"

उन्होंने नज़र भरकर उसे गौर से देखा। बोले, "फ़रमाइए।"

उनके लहजे ने सफ़िया की हिम्मत बढ़ा दी, "आप...आप कहाँ के रहने वाले हैं?"

उन्होंने कुछ हैरान होकर उसे फिर गौर से देखा, "मेरा वतन देहली है, आप भी तो हमारी ही तरफ़ की मालूम होती हैं, अपने अजीज़ों से मिलने आई होंगी।"

"जी हाँ। मैं लखनऊ की हूँ। अपने भाइयों से मिलने आई थी। वे लोग इधर आ गए हैं। आपको...आपको भी तो शायद इधर आए-?"

"जी, जब पाकिस्तान बना था तभी आए थे, मगर हमारा वतन तो देहली ही है।"

सफ़िया ने हैंडबैग मेज़ पर रख दिया और नमक की पुड़िया निकालकर उनके सामने रख दी और फिर आहिस्ता-आहिस्ता रुक-रुक कर उनको सब कुछ बता दिया।

उन्होंने पुड़िया को धीरे से अपनी तरफ़ सरकाना शुरू किया। जब सफ़िया की बात खत्म हो गई तब उन्होंने पुड़िया को दोनों हाथों में उठाया, अच्छी तरह लपेटा और खुद सफ़िया के बैग में रख दिया। बैग सफ़िया को देते हुए बोले, "मुहब्बत तो कस्टम से इस तरह गुज़र जाती है कि कानून हैरान रह जाता है।"

वह चलने लगी तो वे भी खड़े हो गए और कहने लगे, "जामा मस्जिद की सीढ़ियों को मेरा सलाम कहिएगा और उन खातून को यह नमक देते वक्त मेरी तरफ़ से कहिएगा कि लाहौर अभी तक उनका वतन है और देहली मेरा, तो बाकी सब रफ्ता-रफ्ता ठीक हो जाएगा।"

सफ़िया कस्टम के जंगले से निकलकर दूसरे प्लेटफ़ार्म पर आ गई और वे वहीं खड़े रहे।

प्लेटफार्म पर उसके बहुत-से दोस्त, भाई रिश्तेदार थे, हसरत भरी नज़रों, बहते हुए आँसुओं, ठंडी साँसों और भिचे हुए होठों को बीच में से काटती हुई रेल सरहद की तरफ बढ़ी। अटारी में पाकिस्तानी पुलिस उतरी, हिंदुस्तानी पुलिस सवार हुई। कुछ समझ में नहीं आता था कि कहाँ से लाहौर खत्म हुआ और किस जगह से अमृतसर शुरू हो गया। एक

ज़मीन थी, एक ज़बान थी, एक-सी सूरतें और लिबास, एक-सा लबोलहजा, और अंदाज़ थे, गालियाँ भी एक ही-सी थीं जिनसे दोनों बड़े प्यार से एक-दूसरे को नवाज़ रहे थे। बस मुश्किल सिर्फ़ इतनी थी कि भरी हुई बंदूकें दोनों के हाथों में थीं।

अमृतसर में कस्टम वाले फ़र्स्ट क्लास वालों के सामान की जाँच उनके डिब्बे के सामने ही कर रहे थे। सफ़िया का सारा सामान देखा जा चुका तो वह उन नौजवान कस्टम अफ़सर की ओर बढ़ी जो बातचीत और सूरत से बंगाली लगते थे, "देखिए, मेरे पास नमक है, थोड़ा-सा।"

फिर उसने हैंडबैग खोला और वह पुड़िया उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए, अटकते, झिझकते, हिचकिचाते हुए उनको सब-कुछ कह सुनाया। उन्होंने सिर झुका लिया था, सुनते रहे, बीच-बीच में सिर उठाते, गौर से उसे देखते, फिर सुनने लगते। बात पूरी हो गई तो उन्होंने एक बार फिर सफ़िया को ऊपर से नीचे तक देखा, धीरे से बोले, "इधर आइए ज़रा!"

चलते-चलते उन्होंने एक-दूसरे से कहा, "इनके सामान का ध्यान रखिएगा।"

प्लेटफ़ार्म के सिरे पर एक कमरा था। वे उसके अंदर घुसे। सफ़िया दाखिल होते हिचकिचाई। वे मुसकराकर बोले, "आइए, आइए न!"

जेब से रूमाल निकालकर उन्होंने कुर्सी को झाड़ा और बोले, "बैठिए।"

सफ़िया ने पुड़िया और बैग को मेज पर रख दिया। बाहर की तरफ़ झाँककर उन्होंने एक पुलिस वाले को इशारा किया। सफ़िया के पैर तले की ज़मीन खिसकने लगी—अब क्या होगा!

"दो चाय लाओ, अच्छी वाली।" पुलिसवाला सफ़िया को घूरता हुआ चला गया।

फिर उन्होंने मेज़ की दराज़ खींची और उसमें अंदर दूर तक हाथ डालकर एक किताब निकाली। किताब को सफ़िया के सामने रखकर उन्होंने पहला सफ़ा खोल दिया। बाईं ओर नज़रुल इस्लाम की तसवीर थी और टाइटल वाले सफ़े पर अंग्रेज़ी के कुछ धुँधले शब्द थे—"शमसुलइसलाम की तरफ़ से सुनील दास गुप्त को प्यार के साथ, ढाका 1946"

"तो आप क्या ईस्ट बंगाल के हैं?"

"हाँ, मेरा वतन ढाका है।" उन्होंने बड़े फ़ख्र से जवाब दिया।

"तो आप यहाँ कब आए?"

"जब डिवीज़न हुआ तभी आए, मगर हमारा वतन ढाका है, मैं तो कोई बारह-तेरह साल का था। पर नज़रुल और टैगोर को तो हम लोग बचपन से पढ़ते थे। जिस दिन हम रात यहाँ आ रहे थे उसके ठीक एक वर्ष पहले मेरे सबसे पुराने, सबसे प्यारे, बचपन के दोस्त ने मुझे यह किताब दी थी। उस दिन मेरी सालगिरह थी—फिर हम कलकत्ता रहे, पढ़े, नौकरी भी मिल गई, पर हम वतन आते-जाते थे।"

"वतन?" सफ़िया ने ज़रा हैरान होकर पूछा।

"मैंने आपसे कहा न कि मेरा वतन ढाका है।"–उन्होंने ज़रा बुरा मानकर कहा।

"हाँ-हाँ, ठीक है। ठीक है।" सफ़िया जल्दी से बोली।

"तो पहले तो बस इधर ही कस्टम था, अब उधर भी कुछ गोलमाल हो गया है।"

उन्होंने चाय की प्याली सफ़िया की तरफ़ खिसकाई और खुद एक बड़ा-सा घूँट भरकर बोले, "वैसे तो डाभ कलकत्ता में भी होता है जैसे नमक यहाँ भी होता है, पर हमारे यहाँ के डाभ की क्या बात है! हमारी ज़मीन, हमारे पानी का मज़ा ही कुछ और है!"

उठते वक्त उन्होंने पुड़िया सफ़िया के बैग में रख दी और खुद उस बैग को उठाकर आगे-आगे चलने लगे; सफ़िया ने उनके पीछे चलना शुरू किया।

जब सफ़िया अमृतसर के पुल पर चढ़ रही थी तब पुल की सबसे निचली सीढ़ी के पास वे सिर झुकाए चुपचाप खड़े थे। सफ़िया सोचती जा रही थी किसका वतन कहाँ है–वह जो कस्टम के इस तरफ़ है या उस तरफ़!

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. सफ़िया के भाई ने नमक की पुड़िया ले जाने से क्यों मना कर दिया?
2. नमक की पुड़िया ले जाने के संबंध में सफ़िया के मन में क्या द्वंद्व था?
3. जब सफ़िया अमृतसर पुल पर चढ़ रही थी तो कस्टम ऑफ़िसर निचली सीढ़ी के पास सिर झुकाए चुपचाप क्यों खड़े थे?
4. ***लाहौर अभी तक उनका वतन है*** और ***देहली मेरा*** या ***मेरा वतन ढाका है*** जैसे उद्‍गार किस सामाजिक यथार्थ का संकेत करते हैं।
5. नमक ले जाने के बारे में सफ़िया के मन में उठे द्वंद्वों के आधार पर उसकी चारित्रिक विशेषताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. ***मानचित्र पर एक लकीर खींच देने भर से ज़मीन और जनता बँट नहीं जाती है–*** उचित तर्कों व उदाहरणों के ज़रिये इसकी पुष्टि करें।
7. ***नमक*** कहानी में भारत व पाक की जनता के आरोपित भेदभावों के बीच मुहब्बत का नमकीन स्वाद घुला हुआ है, कैसे?

क्यों कहा गया?

1. क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं, कुछ मुहब्बत, मुरौवत, आदमियत, इंसानियत के नहीं होते?
2. भावना के स्थान पर बुद्धि धीरे-धीरे उस पर हावी हो रही थी।
3. मुहब्बत तो कस्टम से इस तरह गुज़र जाती है कि कानून हैरान रह जाता है।
4. हमारी ज़मीन हमारे पानी का मज़ा ही कुछ और है!

समझाइए तो ज़रा

1. फिर पलकों से कुछ सितारे टूटकर दूधिया आँचल में समा जाते हैं।
2. किसका वतन कहाँ है– वह जो कस्टम के इस तरफ़ है या उस तरफ़।

पाठ के आसपास

1. 'नमक' कहानी में हिंदुस्तान-पाकिस्तान में रहने वाले लोगों की भावनाओं, संवेदनाओं को उभारा गया है। वर्तमान संदर्भ में इन संवेदनाओं की स्थिति को तर्क सहित स्पष्ट कीजिए।
2. सफ़िया की मन:स्थिति को कहानी में एक विशिष्ट संदर्भ में अलग तरह से स्पष्ट किया गया है। अगर आप सफ़िया की जगह होते/होतीं तो क्या आपकी मन:स्थिति भी वैसी ही होती? स्पष्ट कीजिए।
3. भारत-पाकिस्तान के आपसी संबंधों को सुधारने के लिए दोनों सरकारें प्रयासरत हैं। व्यक्तिगत तौर पर आप इसमें क्या योगदान दे सकते/सकती हैं?
4. लेखिका ने विभाजन से उपजी विस्थापन की समस्या का चित्रण करते हुए सफ़िया व सिख बीबी के माध्यम से यह भी परोक्ष रूप से संकेत किया है कि इसमें भी विवाह की रीति के कारण स्त्री सबसे अधिक विस्थापित है। क्या आप इससे सहमत हैं?
5. विभाजन के अनेक स्वरूपों में बँटी जनता को मिलाने की अनेक भूमियाँ हो सकती हैं–***रक्त संबंध, विज्ञान, साहित्य व कला।*** इनमें से कौन सबसे ताकतवर है और क्यों?

आपकी राय

मान लीजिए आप अपने मित्र के पास विदेश जा रहे/रही हैं। आप सौगात के तौर पर भारत की कौन-सी चीज़ ले जाना पसंद करेंगे/करेंगी और क्यों?

© NCERT not to be republished

भाषा की बात

1. नीचे दिए गए वाक्यों को ध्यान से पढ़िए–
   (क) हमारा वतन तो जी लाहौर ही है।
   (ख) क्या सब कानून हुकूमत के ही होते हैं?
   सामान्यत: 'ही' निपात का प्रयोग किसी बात पर बल देने के लिए किया जाता है। ऊपर दिए गए दोनों वाक्यों में 'ही' के प्रयोग से अर्थ में क्या परिवर्तन आया है? स्पष्ट कीजिए। **'ही'** का प्रयोग करते हुए दोनों तरह के अर्थ वाले पाँच-पाँच वाक्य बनाइए।
2. नीचे दिए गए शब्दों के हिंदी रूप लिखिए–
   मुरौवत, आदमियत, अदीब, साडा, मायने, सरहद, अक्स, लबोलहजा, नफीस
3. ***पंद्रह दिन यों गुज़रे कि पता ही नहीं चला***– वाक्य को ध्यान से पढ़िए और इसी प्रकार के (यों, कि, ही से युक्त पाँच वाक्य बनाइए।)

सृजन के क्षण

'नमक' कहानी को लेखक ने अपने नज़रिये से अन्य पुरुष शैली में लिखा है। आप सफ़िया की नज़र से/ उत्तम पुरुष शैली में इस कहानी को अपने शब्दों में कहें।

© NCERT not to be republished

इन्हें भी जानें

1. मुहर्रम– इस्लाम धर्म के अनुसार साल का पहला महीना, जिसकी दसवीं तारीख को इमाम हुसैन शहीद हुए।
2. सैयद– मुसलमानों के चौथे खलीफ़ा ***अली*** के वंशजों को सैयद कहा जाता है।
3. इकबाल– ***सारे जहाँ से अच्छा*** के गीतकार
4. नज़रुल इस्लाम– बांग्ला के क्रांतिकारी कवि
5. शमसुल इस्लाम– बांग्ला देश के प्रसिद्ध कवि
6. इस कहानी को पढ़ते हुए कई फ़िल्म, कई रचनाएँ, कई गाने आपके ज़ेहन में आए होंगे। उनकी सूची बनाइए किन्हीं दो (फ़िल्म और रचना) की विशेषता को लिखिए। आपकी सुविधा के लिए कुछ नाम दिए जा रहे हैं।

फिल्में	**रचनाएँ**
1947 अर्थ	तमस (उपन्यास – **भीष्म साहनी**)
मम्मो	टोबाटेक सिंह (कहानी – **मंटो**)

ट्रेन टु पाकिस्तान	ज़िंदगीनामा (उपन्यास – **कृष्णा सोबती**)
गदर	पिंजर (उपन्यास – **अमृता प्रीतम**)
खामोश पानी	झूठा सच (उपन्यास – **यशपाल**)
हिना	मलबे का मालिक (कहानी – **मोहन राकेश**)
वीर ज़ारा	पेशावर एक्सप्रेस (कहानी – **कृश्न चंदर**)

7. सरहद और मज़हब के संदर्भ में इसे देखें–

तू हिंदू बनेगा न मुसलमान बनेगा,
इंसान की औलाद है, इंसान बनेगा।
मालिक ने हर इंसान को इंसान बनाया,
हमने उसे हिंदू या मुसलमान बनाया।
कुदरत ने तो बख्शी थी हमें एक ही धरती,
हमने कहीं भारत कहीं, ईरान बनाया॥'
जो तोड़ दे हर बंद वो तूफ़ान बनेगा।
इंसान की औलाद है इंसान बनेगा।

– फ़िल्म: धूल का फूल, गीतकार: साहिर लुधियानवी

© NCERT not to be republished

शब्द-छवि

उम्दा – अच्छा
नफ़ीस – सुरुचिपूर्ण
रुखसत – विदा
साडा – हमारा
हिस्से-बखरे – बँटवारा
मुरौवत – संकोच
अदीब – साहित्यकार
लबोलहजा – बोलचाल का तरीका
नवाज़ – सम्मानित करना
सौगात – भेंट
अजीज़ – प्रिय
बाजी – दीदी
दोहर – कपड़े को दोहरा कर सिली गई चादर, लिहाफ़

12070CH17

हजारी प्रसाद द्विवेदी 17

जन्म : *सन् 1907, आरत दुबे का छपरा, बलिया (उत्तर प्रदेश)*

प्रमुख रचनाएँ : *अशोक के फूल, कल्पलता, विचार और वितर्क, कुटज, विचार-प्रवाह, आलोक पर्व, प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद(निबंध-संग्रह); बाणभट्ट की आत्मकथा, चारुचंद्रलेख, पुनर्नवा, अनामदास का पोथा (उपन्यास); सूर साहित्य, कबीर, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, नाथ संप्रदाय, कालिदास की लालित्य-योजना, हिंदी साहित्य का आदिकाल, हिंदी साहित्य की भूमिका, हिंदी साहित्य: उद्‌भव और विकास (आलोचना-साहित्येतिहास); संदेश रासक, पृथ्वीराजरासो, नाथ-सिद्धों की बानियाँ (ग्रंथ-संपादन); विश्व भारती (शांतिनिकेतन) पत्रिका का संपादन;*

पुरस्कार व सम्मान : *साहित्य अकादेमी ('आलोक पर्व' पर) भारत सरकार द्वारा 'पद्‌मभूषण', लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा डी. लिट्*

मृत्यु : *सन् 1979, दिल्ली में*

© NCERT not to be republished

> *मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को परदुखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।*

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का साहित्य कर्म भारतवर्ष के सांस्कृतिक इतिहास की रचनात्मक परिणति है। हिंदी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, बांग्ला आदि भाषाओं व उनके साहित्य के साथ इतिहास, संस्कृति, धर्म, दर्शन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की व्यापकता व गहनता में पैठ कर उनका अगाध पाडिंत्य नवीन मानवतावादी सर्जना और आलोचना की क्षमता लेकर प्रकट हुआ है। वे ज्ञान को बोध और पांडित्य की सहृदयता में ढाल कर एक ऐसा रचना-संसार हमारे सामने उपस्थित करते हैं जो विचार की तेजस्विता, कथन के लालित्य और बंध की शास्त्रीयता

का संगम है। इस प्रकार उनमें एक साथ कबीर, रवींद्रनाथ व तुलसी एकाकार हो उठते हैं। इसके बाद, उससे जो प्राणधारा फूटती है वह लोकधर्मी रोमैंटिक धारा है, जो उनके उच्च कृतित्व को सहजग्राह्य बनाए रखती है। उनकी सांस्कृतिक दृष्टि जबरदस्त है। उसमें इस बात पर विशेष बल है कि भारतीय संस्कृति किसी एक जाति की देन नहीं, बल्कि समय-समय पर उपस्थित अनेक जातियों के श्रेष्ठ साधनांशों के लवण-नीर संयोग से उसका विकास हुआ है। उसकी मूल चेतना विराट मानवतावाद है, जिसके संस्पर्श से कला और साहित्य ही नहीं, यह संपूर्ण जीवन ही सौंदर्य व आनंद से परिपूर्ण हो उठता है।

द्विवेदी जी के सभी उपन्यास समाज के जात-पाँत और मज़हबों में विभाजन और आधी आबादी (स्त्री)के दलन की पीड़ा को सबसे बड़े सांस्कृतिक संकट के रूप पहचानने, रचने और सामंजस्य में समाधान खोजने का साहित्य है। वे स्त्री को सामाजिक अन्याय का सबसे बड़ा शिकार मानते हैं तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिक संदर्भ में उसकी पीड़ा का गहरा विश्लेषण करते हुए सरस श्रद्धा के साथ उसकी महिमा प्रतिष्ठित करते हैं– विशेषकर ***बाणभट्ट की आत्मकथा*** *में। मानवता और लोक से विमुख कोई भी विज्ञान, तंत्र-मंत्र, विश्वास या सिद्धांत उन्हें ग्राह्य नहीं है और मानव की जिजीविषा और विजययात्रा में उनकी अखंड आस्था है। इसी से वे मानवतावादी साहित्यकार व समीक्षक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।*

द्विवेदी जी का आलोचक व्यक्तित्व हिंदी-चिंताधारा की सहज लोक-परंपरा को पहचान लेता है और उसी से संबद्ध नाथों-सिद्धों और कबीर से हिंदी की साहित्य-परंपरा को जोड़ कर उसे एक प्रगतिशील मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है। भक्तिकाल को भारतीय चिंताधारा का सहज विकास मानने वाले इतिहासकार के रूप में उनकी भूमिका ऐतिहासिक महत्त्व रखती है।

द्विवेदी जी का निबंध-साहित्य इस अर्थ में बड़े महत्त्व का है कि साहित्य-दर्शन तथा समाज-व्यवस्था संबंधी उनकी कई मौलिक उद्‌भावनाएँ मूलत: निबंधों में ही मिलती हैं, पर यह विचार-सामग्री पांडित्य के बोझ से आक्रांत होने की जगह उसके बोध से अभिषिक्त हैं। अपने लेखन द्वारा निबंध-विधा को सर्जनात्मक साहित्य की कोटि में ला देने वाले द्विवेदी जी के ये निबंध व्यक्तित्व-व्यंजना और आत्मपरक शैली से युक्त हैं।

© NCERT not to be republished

हजारी प्रसाद द्विवेदी

यहाँ प्रस्तुत ललित निबंध **शिरीष के फूल** लेखक के संग्रह **कल्पलता** से उद्धृत है। इसमें लेखक आँधी, लू और गरमी की प्रचंडता में भी अवधूत की तरह **अविचल** होकर कोमल पुष्पों का सौंदर्य बिखेर रहे शिरीष के माध्यम से मनुष्य की अजेय जिजीविषा और तुमुल कोलाहल कलह के बीच धैर्यपूर्वक, लोक के साथ चिंतारत, कर्तव्यशील बने रहने को महान मानवीय मूल्य के रूप में स्थापित करता है। ऐसी भावधारा में बहते हुए उसे देह-बल के ऊपर आत्मबल का महत्त्व सिद्ध करने वाली इतिहास-विभूति गांधीजी की याद हो आती है तो वह गांधीवादी मूल्यों के अभाव की पीड़ा से भी कसमसा उठता है। निबंध की शुरुआत में लेखक शिरीष पुष्प की कोमल सुंदरता के जाल बुनता है, फिर उसे भेदकर उसके इतिहास में और फिर उसके ज़रिये मध्यकाल के सांस्कृतिक इतिहास में पैठता है; फिर तत्कालीन जीवन व सामंती वैभव-विलास को सावधानी से उकेरते हुए उसका खोखलापन भी उजागर करता है। लेखक अशोक के फूल के भूल जाने की तरह ही शिरीष को नज़रअंदाज़ किए जाने की साहित्यिक घटना से आहत है और इसी में उसे सच्चे कवि का तत्त्व-दर्शन भी होता है। उसके अनुसार योगी की अनासक्त शून्यता और प्रेमी की सरस पूर्णता एक साथ उपलब्ध होना सत्कवि होने की एकमात्र शर्त है। ऐसा कवि ही समस्त प्राकृतिक और मानवीय वैभव में रमकर भी चुकता नहीं और निरंतर आगे बढ़ते जाने की प्रेरणा देता है।

शिरीष के पुराने फलों की अधिकार-लिप्सु खड़खड़ाहट और नए पत्ते-फलों द्वारा उन्हें धकियाकर बाहर निकालने में लेखक साहित्य, समाज व राजनीति में पुरानी और नयी पीढ़ी के द्वंद्व को संकेतित करता है तथा स्पष्ट रूप से पुरानी पीढ़ी और हम सब में नयेपन के स्वागत का साहस देखना चाहता है। इस निबंध का शिल्प इसी में चर्चित इक्षुदंड की तरह है– सांस्कृतिक संदर्भों व शब्दावली की भड़कीली खोल के भीतर सहज भावधारा के मधुरस से युक्त। यह हर तरह से आस्वाद्य और प्रयोजनीय है तथा इस प्रकार लेखक के प्रतिनिधि निबंधों में से एक है।

© NCERT not to be republished

शिरीष के फूल

जहाँ बैठ के यह लेख लिख रहा हूँ उसके आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ, शिरीष के अनेक पेड़ हैं। जेठ की जलती धूप में, जबकि धरित्री निर्धूम अग्निकुंड बनी हुई थी, शिरीष नीचे से ऊपर तक फूलों से लद गया था। कम फूल इस प्रकार की गरमी में फूल सकने की हिम्मत करते हैं। कर्णिकार और आरग्वध (अमलतास) की बात मैं भूल नहीं रहा हूँ। वे भी आस–पास बहुत हैं। लेकिन शिरीष के साथ आरग्वध की तुलना नहीं की जा सकती। वह पद्रंह-बीस दिन के लिए फूलता है, वसंत ऋतु के पलाश की भाँति। कबीरदास को इस तरह पद्रंह दिन के लिए लहक उठना पसंद नहीं था। यह भी क्या कि दस दिन फूले और फिर खंखड़-के-खंखड़–'दिन दस फूला फूलिके खंखड़ भया पलास!' ऐसे दुमदारों से तो लँडूरे भले। फूल है शिरीष। वसंत के आगमन के साथ लहक उठता है, आषाढ़ तक जो निश्चित रूप से मस्त बना रहता है। मन रम गया तो भरे भादों में भी निर्घात फूलता रहता है। जब उमस से प्राण उबलता रहता है और लू से हृदय सूखता रहता है, एकमात्र शिरीष कालजयी अवधूत की भाँति जीवन की अजेयता का मंत्र प्रचार करता रहता है। यद्यपि कवियों की भाँति हर फूल-पत्ते को देखकर मुग्ध होने लायक हृदय विधाता ने नहीं दिया है, पर नितांत ठूँठ भी नहीं हूँ। शिरीष के पुष्प मेरे मानस में थोड़ा हिल्लोल ज़रूर पैदा करते हैं।

शिरीष के वृक्ष बड़े और छायादार होते हैं। पुराने भारत का रईस जिन मंगल-जनक वृक्षों को अपनी वृक्ष-वाटिका की चहारदीवारी के पास लगाया करता था, उनमें एक शिरीष भी है। (वृहतसंहिता 55,13) अशोक, अरिष्ट, पुन्नाग और शिरीष के छायादार और घनमसृण हरीतिमा से परिवेष्टित वृक्ष–वाटिका ज़रूर बड़ी मनोहर दिखती होगी। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में बताया है कि वाटिका के सघन छायादार वृक्षों की छाया में ही झूला(प्रेंखा दोला) लगाया जाना चाहिए। यद्यपि पुराने कवि बकुल के पेड़ में ऐसी दोलाओं को लगा देखना चाहते थे, पर शिरीष भी क्या बुरा है! डाल इसकी अपेक्षाकृत कमज़ोर ज़रूर होती है, पर उसमें झूलनेवालियों का वज़न भी तो बहुत ज़्यादा नहीं होता। कवियों की यही तो बुरी आदत है कि वजन का एकदम खयाल नहीं करते। मैं तुंदिल नरपतियों की बात नहीं कह रहा हूँ, वे चाहें तो लोहे का पेड़ बनवा लें।

© NCERT not to be republished

शिरीष का फूल संस्कृत-साहित्य में बहुत कोमल माना गया है। मेरा अनुमान है कि कालिदास ने यह बात शुरू-शुरू में प्रचार की होगी। उनका इस पुष्प पर कुछ पक्षपात था (मेरा भी है)। कह गए हैं, शिरीष पुष्प केवल भौंरों के पदों का कोमल दबाव सहन कर सकता है, पक्षियों का बिलकुल नहीं– 'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं शिरीष पुष्पं न पुनः पतत्रिणाम्।' अब मैं इतने बड़े कवि की बात का विरोध कैसे करूँ? सिर्फ विरोध करने की हिम्मत न होती तो भी कुछ कम बुरा नहीं था, यहाँ तो इच्छा भी नहीं है। खैर, मैं दूसरी बात कह रहा था। शिरीष के

फूलों की कोमलता देखकर परवर्ती कवियों ने समझा कि उसका सब-कुछ कोमल है! यह भूल है। इसके फल इतने मज़बूत होते हैं कि नए फूलों के निकल आने पर भी स्थान नहीं छोड़ते। जब तक नए फल-पत्ते मिलकर, धकियाकर उन्हें बाहर नहीं कर देते तब तक वे डटे रहते हैं। वसंत के आगमन के समय जब सारी वनस्थली पुष्प-पत्र से मर्मरित होती रहती है, शिरीष के पुराने फल बुरी तरह खड़खड़ाते रहते हैं। मुझे इनको देखकर उन नेताओं की बात याद आती है, जो किसी प्रकार ज़माने का रुख नहीं पहचानते और जब तक नयी पौध के लोग उन्हें धक्का मारकर निकाल नहीं देते तब तक जमे रहते हैं।

मैं सोचता हूँ कि पुराने की यह अधिकार-लिप्सा क्यों नहीं समय रहते सावधान हो जाती? जरा और मृत्यु, ये दोनों ही जगत के अतिपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं। तुलसीदास ने अफ़सोस के साथ इनकी सच्चाई पर मुहर लगाई थी—'धरा को प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा, जो बरा सो बुताना!' मैं शिरीष के फूलों को देखकर कहता हूँ कि क्यों नहीं फलते ही समझ लेते बाबा कि झड़ना निश्चित है! सुनता कौन हैं? महाकालदेवता सपासप कोड़े चला रहे हैं, जीर्ण और दुर्बल झड़ रहे हैं, जिनमें प्राणकण थोड़ा भी ऊर्ध्वमुखी है, वे टिक जाते हैं। दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा जाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे!

एक-एक बार मुझे मालूम होता है कि यह शिरीष एक अद्भुत अवधूत है। दुःख हो या सुख, वह हार नहीं मानता। न ऊधो का लेना, न माधो का देना। जब धरती और आसमान जलते रहते हैं, तब भी यह हज़रत न जाने कहाँ से अपना रस खींचते रहते हैं। मौज में आठों याम मस्त रहते हैं। एक वनस्पतिशास्त्री ने मुझे बताया है कि यह उस श्रेणी का पेड़ है जो वायुमंडल से अपना रस खींचता है। ज़रूर खींचता होगा। नहीं तो भयंकर लू के समय इतने कोमल तंतुजाल और ऐसे सुकुमार केसर को कैसे उगा सकता था? अवधूतों के मुँह से ही संसार की सबसे सरस रचनाएँ निकली हैं। कबीर बहुत-कुछ इस शिरीष के समान ही थे, मस्त और बेपरवा, पर सरस और मादक। कालिदास भी ज़रूर अनासक्त योगी रहे होंगे। शिरीष के फूल फक्कड़ाना मस्ती से ही उपज सकते हैं और 'मेघदूत' का काव्य उसी प्रकार के अनासक्त अनाविल उन्मुक्त हृदय में उमड़ सकता है। जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है? कहते हैं कर्णाट-राज की प्रिया विज्जिका देवी ने गर्वपूर्वक कहा था कि एक कवि ब्रह्मा थे, दूसरे वाल्मीकि और तीसरे व्यास। एक ने वेदों को दिया, दूसरे ने रामायण को और तीसरे ने महाभारत को। इनके अतिरिक्त और कोई यदि कवि होने का दावा करे तो मैं

© NCERT not to be republished

कर्णाट-राज की प्यारी रानी उनके सिर पर अपना बायाँ चरण रखती हूँ– 'तेषां मूर्घ्नि ददामि वामचरणं कर्णाट-राजप्रिया!' मैं जानता हूँ कि इस उपालंभ से दुनिया का कोई कवि हारा नहीं है, पर इसका मतलब यह नहीं कि कोई लजाया नहीं तो उसे डाँटा भी न जाए। पर मैं कहता हूँ कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की ओर देखो। लेकिन अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो!

कालिदास वज़न ठीक रख सकते थे, क्योंकि वे अनासक्त योगी की स्थिर-प्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय पा चुके थे। कवि होने से क्या होता है? मैं भी छंद बना लेता हूँ, तुक जोड़ लेता हूँ और कालिदास भी छंद बना लेते थे–तुक भी जोड़ ही सकते होंगे इसलिए हम दोनों एक श्रेणी के नहीं हो जाते। पुराने सहृदय ने किसी ऐसे ही दावेदार को फटकारते हुए कहा था–'वयमपि कवयः कवयः कवयस्ते कालिदासाद्या!' मैं तो मुग्ध और विस्मय-विमूढ़ होकर कालिदास के एक-एक श्लोक को देखकर हैरान हो जाता हूँ। अब इस शिरीष के फूल का ही एक उदाहरण लीजिए। शकुंतला बहुत सुंदर थी। सुंदर क्या होने से कोई हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुंदर हृदय से वह सौंदर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुंतला कालिदास के हृदय से निकली थी। विधाता की ओर से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की ओर से भी नहीं। राजा दुष्यंत भी अच्छे-भले प्रेमी थे। उन्होंने शकुंतला का एक चित्र बनाया था; लेकिन रह-रहकर उनका मन खीझ उठता था। उहूँ, कहीं-न-कहीं कुछ छूट गया है। बड़ी देर के बाद उन्हें समझ में आया कि शकुंतला के कानों में वे उस शिरीष पुष्प को देना भूल गए हैं, जिसके केसर गंडस्थल तक लटके हुए थे, और रह गया है शरच्चंद्र की किरणों के समान कोमल और शुभ्र मृणाल का हार।

कालिदास सौंदर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँच सकते थे, दुख हो कि सुख, वे अपना भाव-रस उस अनासक्त कृपीवल की भाँति खींच लेते थे जो निर्दलित ईक्षुदंड से रस निकाल लेता है। कालिदास महान थे, क्योंकि वे अनासक्त रह सके थे। कुछ इसी श्रेणी की अनासक्ति आधुनिक हिंदी कवि सुमित्रानंदन पंत में है। कविवर रवींद्रनाथ में यह अनासक्ति थी। एक जगह उन्होंने लिखा–'राजोद्यान का सिंहद्वार कितना ही अभ्रभेदी क्यों न हो, उसकी शिल्पकला कितनी ही सुंदर क्यों न हो, वह यह नहीं कहता कि हममें आकर ही सारा रास्ता समाप्त हो गया। असल गंतव्य स्थान उसे अतिक्रम करने के बाद ही है, यही बताना उसका कर्तव्य है।' फूल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

शिरीष तरु सचमुच पक्के अवधूत की भाँति मेरे मन में ऐसी तरंगें जगा देता है जो ऊपर की ओर उठती रहती हैं। इस चिलकती धूप में इतना इतना सरस वह कैसे बना रहता है? क्या ये बाह्य परिवर्तन–धूप, वर्षा, आँधी, लू–अपने आपमें सत्य नहीं हैं? हमारे देश के ऊपर

से जो यह मार-काट, अग्निदाह, लूट-पाट, खून-खच्चर का बवंडर बह गया है, उसके भीतर भी क्या स्थिर रहा जा सकता है? शिरीष रह सका है। अपने देश का एक बूढ़ा रह सका था। क्यों मेरा मन पूछता है कि ऐसा क्यों संभव हुआ? क्योंकि शिरीष भी अवधूत है। शिरीष वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर है। गांधी भी वायुमंडल से रस खींचकर इतना कोमल और इतना कठोर हो सका था। मैं जब-जब शिरीष की ओर देखता हूँ तब तब हूक उठती है—हाय, वह अवधूत आज कहाँ है!

अभ्यास

पाठ के साथ

1. लेखक ने शिरीष को कालजयी अवधूत(संन्यासी)की तरह क्यों माना है?
2. ***हृदय की कोमलता को बचाने के लिए व्यवहार की कठोरता भी कभी-कभी ज़रूरी हो जाती है***– प्रस्तुत पाठ के आधार पर स्पष्ट करें।
3. द्विवेदी जी ने शिरीष के माध्यम से कोलाहल व संघर्ष से भरी जीवन-स्थितियों में अविचल रह कर जिजीविषु बने रहने की सीख दी है। स्पष्ट करें।
4. ***हाय, वह अवधूत आज कहाँ है!*** ऐसा कहकर लेखक ने आत्मबल पर देह-बल के वर्चस्व की वर्तमान सभ्यता के संकट की ओर संकेत किया है। कैसे?
5. कवि (साहित्यकार) के लिए अनासक्त योगी की स्थिर प्रज्ञता और विदग्ध प्रेमी का हृदय– एक साथ आवश्यक है। ऐसा विचार प्रस्तुत कर लेखक ने साहित्य-कर्म के लिए बहुत ऊँचा मानदंड निर्धारित किया है। विस्तारपूर्वक समझाएँ।
6. सर्वग्रासी काल की मार से बचते हुए वही दीर्घजीवी हो सकता है, जिसने अपने व्यवहार में जड़ता छोड़कर नित बदल रही स्थितियों में निरंतर अपनी गतिशीलता बनाए रखी है। पाठ के आधार पर स्पष्ट करें।
7. आशय स्पष्ट कीजिए–

   क) दुरंत प्राणधारा और सर्वव्यापक कालाग्नि का संघर्ष निरंतर चल रहा है। मूर्ख समझते हैं कि जहाँ बने हैं, वहीं देर तक बने रहें तो कालदेवता की आँख बचा पाएँगे। भोले हैं वे। हिलते-डुलते रहो, स्थान बदलते रहो, आगे की ओर मुँह किए रहो तो कोड़े की मार से बच भी सकते हो। जमे कि मरे।

   ख) जो कवि अनासक्त नहीं रह सका, जो फक्कड़ नहीं बन सका, जो किए-कराए का लेखा-जोखा मिलाने में उलझ गया, वह भी क्या कवि है?.....मैं कहता हूँ कवि बनना है मेरे दोस्तो, तो फक्कड़ बनो।

   ग) फूल हो या पेड़, वह अपने-आप में समाप्त नहीं है। वह किसी अन्य वस्तु को दिखाने के लिए उठी हुई अँगुली है। वह इशारा है।

© NCERT not to be republished

पाठ के आसपास

1. शिरीष के पुष्प को ***शीतपुष्प*** भी कहा जाता है। ज्येष्ठ माह की प्रचंड गरमी में फूलने वाले फूल को ***शीतपुष्प*** संज्ञा किस आधार पर दी गई होगी?
2. ***कोमल*** और ***कठोर*** दोनों भाव किस प्रकार गांधीजी के व्यक्तित्व की विशेषता बन गए।
3. आजकल अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में भारतीय फूलों की बहुत माँग है। बहुत से किसान साग-सब्ज़ी व अन्न उत्पादन छोड़ फूलों की खेती की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इसी मुद्दे को विषय बनाते हुए वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करें।
4. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इस पाठ की तरह ही वनस्पतियों के संदर्भ में कई व्यक्तित्त्व व्यंजक ललित निबंध और भी लिखे हैं—कुटज, आम फिर बौरा गए, अशोक के फूल, देवदारु आदि। शिक्षक की सहायता से इन्हें ढूँढ़िए और पढ़िए।
5. द्विवेदी जी की वनस्पतियों में ऐसी रुचि का क्या कारण हो सकता है? आज साहित्यिक रचना-फलक पर प्रकृति की उपस्थिति न्यून से न्यून होती जा रही है। तब ऐसी रचनाओं का महत्त्व बढ़ गया है। प्रकृति के प्रति आपका दृष्टिकोण रुचिपूर्ण है या उपेक्षामय? इसका मूल्यांकन करें।

भाषा की बात

दस दिन फूले और फिर खंखड़-खंखड़ इस लोकोक्ति से मिलते-जुलते कई वाक्यांश पाठ में हैं। उन्हें छाँट कर लिखें।

इन्हें भी जानें

अशोक वृक्ष– भारतीय साहित्य में बहुचर्चित एक सदाबहार वृक्ष। इसके पत्ते आम के पत्तों से मिलतें हैं। वसंत-ऋतु में इसके फूल लाल-लाल गुच्छों के रूप में आते हैं। इसे कामदेव के पाँच पुष्पवाणों में से एक माना गया हैं इसके फल सेम की तरह होते हैं। इसके सांस्कृतिक महत्त्व का अच्छा चित्रण हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने निबंध **अशोक के फूल** में किया है। भ्रमवश आज एक दूसरे वृक्ष को अशोक कहा जाता रहा है और मूल पेड़ (जिसका वानस्पतिक नाम सराका इंडिका है।) को लोग भूल गए हैं। इसकी एक जाति श्वेत फूलों वाली भी होती है।

अरिष्ठ वृक्ष– रीठा नामक वृक्ष। इसके पत्ते चमकीले हरे होते हैं। फल को सुखाकर उसके छिलके का चूर्ण बनाया जाता है, बाल धोने एवं कपड़े साफ करने के काम में आता है। पेड़ की डालियों व तने पर जगह-जगह काँटे उभरे होते हैं, जो बाल और कपड़े धोने के काम भी आता है।

आरग्वध वृक्ष–लोक में उसे अमलतास कहा जाता है। भीषण गरमी की दशा में जब इसका पेड़ पत्रहीन ठूँठ सा हो जाता है, पर इस पर पीले-पीले पुष्प गुच्छे लटके हुए मनोहर दृश्य उपस्थित करते हैं। इसके फल लगभग एक डेढ़ फुट के बेलनाकार होते हैं जिसमें कठोर बीज होते हैं।

© NCERT not to be republished

शिरीष वृक्ष– लोक में सिरिस नाम से मशहूर पर एक मैदानी इलाके का वृक्ष है। आकार में विशाल होता है पर पत्ते बहुत छोट-छोटे होते है। इसके फूलों में पंखुड़ियों की जगह रेशे-रेशे होते हैं।

शब्द-छवि

कर्णिकार – कनेर (या कनियार) नामक फूल
आरग्वध – अमलतास नामक फूल
खंखड़ – ठूँठ/शुष्क
निर्घात – बिना आघात या बाधा के
अवधूत – सांसारिक बंधनों व विषय-वासनाओं से ऊपर उठा हुआ संन्यासी
लँडूरे – पूँछ विहीन
हिल्लोल – लहर
अरिष्ठ – रीठा नामक वृक्ष
पुन्नाग – एक बड़ा सदाबहार पेड़
घनमसृण – घना-चिकना (गहरा चिकना/मुलायम)
परिवेष्टित – ढँका हुआ
दोला – झूला
बकुल – मौलसिरी का पेड़
तुंदिल – तोंद वाला / मोटे पेट वाला
मर्मरित – (पत्तों की) खड़खड़ाहट या सरसराहट ध्वनि से युक्त
ऊर्ध्वमुखी – प्रगति की दिशा में
दुरंत – जिसका विनाश होना मुश्किल है
हज़रत – श्रीमान (व्यंग्यात्मक स्वर)
अनासक्त – विषय-भोग से ऊपर उठा हुआ
अनाविल – स्वच्छ
कर्णाट – प्राचीन काल का कर्नाटक राज्य
स्थिरप्रज्ञता – अविचल बुद्धि की अवस्था
विदग्ध – अच्छी तरह से तपा हुआ
कार्पण्य – कृपणता
गण्डस्थल – गाल
कृषीवल – किसान
निर्दलित – भलीभाँति निचोड़ा हुआ
ईक्षुदण्ड – ईख (गन्ने) का तना
अभ्रभेदी – गगनचुंबी
सपासप – ध्वन्यात्मक शब्द जो कोड़े पड़ने की आवाज़ के लिए उपयुक्त होता है। यहाँ 'जल्दी-जल्दी' अर्थ रखता है।

© NCERT not to be republished

बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर 18

जन्म *: 14 अप्रैल, सन् 1891, महू (मध्य प्रदेश)में*
प्रमुख रचनाएँ *: दॅ कास्ट्स इन इंडिया, देयर मेकेनिज़्म, जेनेसिस एंड डेवलपमेंट (1917, प्रथम प्रकाशित कृति); द अनटचेबल्स, हू आर दे? (1948); हू आर द शूद्राज़ (1946); बुद्धा एंड हिज़ धम्मा (1957); थाट्स ऑन लिंग्युस्टिक स्टेट्स (1955); द प्रॉब्लम ऑफ़ द रुपी(1923); द एबोलुशन ऑफ़ प्रोविंशियल फ़ायनांस इन ब्रिटिश इंडिया (पीएच.डी. की थीसिस, 1916); द राइज़ एंड फ़ॉल ऑफ़ द हिंदू वीमैन (1965); एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट(1936); लेबर एंड पार्लियामेंट्री डैमोक्रेसी(1943); बुद्धिज़्म एंड कम्युनिज़्म(1956), (पुस्तकें व भाषण); मूक नायक, बहिष्कृत भारत, जनता(पत्रिका-संपादन); हिंदी में उनका संपूर्ण वाङ्मय भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय से* ***बाबा साहब आंबेडकर संपूर्ण वाङ्मय*** *नाम से 21 खंडों में प्रकाशित हो चुका है*
निधन *: दिसंबर, सन् 1956 दिल्ली में*

अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना उचित है।

मानव-मुक्ति के पुरोधा बाबा साहेब भीमराव आंबेडकर अपने समय के सबसे सुपठित जनों में से एक थे। प्राथमिक शिक्षा के बाद बड़ौदा नरेश के प्रोत्साहन पर उच्चतर शिक्षा के लिए न्यूयार्क(अमेरिका)फिर वहाँ से लंदन गए। उन्होंने संस्कृत का धार्मिक, पौराणिक और पूरा वैदिक वाङ्मय अनुवाद के ज़रिये पढ़ा और ऐतिहासिक-सामाजिक क्षेत्र में अनेक मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं। सब मिलाकर वे इतिहास-मीमांसक, विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, शिक्षाविद् तथा धर्म-दर्शन के व्याख्याता बन कर उभरे। स्वदेश में कुछ समय उन्होंने वकालत भी की। समाज और राजनीति में बेहद सक्रिय भूमिका निभाते हुए उन्होंने अछूतों, स्त्रियों और मज़दूरों को मानवीय अधिकार व सम्मान दिलाने के लिए अथक संघर्ष किया।

भारतीय संविधान के निर्माताओं में से एक डॉ. भीमराव आंबेडकर आधुनिक भारतीय चिंतन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने जीवन भर दलितों की मुक्ति एवं सामाजिक समता के लिए संघर्ष किया। उनका पूरा लेखन इसी संघर्ष और सरोकार से जुड़ा हुआ है। स्वयं दलित जाति में जन्मे डॉ. आंबेडकर को बचपन से ही जाति-आधारित उत्पीड़न-शोषण एवं अपमान से गुजरना पड़ा था। इसीलिए विद्यालय के दिनों में जब एक अध्यापक ने उनसे पूछा कि "तुम पढ़-लिख कर क्या बनोगे?" तो बालक भीमराव ने जवाब दिया था ***मैं पढ़-लिख कर वकील बनूँगा, अछूतों के लिए नया कानून बनाऊँगा और छुआछूत को खत्म करूँगा।*** *डॉ. आंबेडकर ने अपना पूरा जीवन इसी संकल्प के पीछे झोंक दिया। इसके लिए उन्होंने जमकर पढ़ाई की। व्यापक अध्ययन एवं चिंतन-मनन के बल पर उन्होंने हिंदुस्तान के स्वाधीनता संग्राम में एक नयी अंतर्वस्तु भरने का काम किया। वह यह था कि दासता का सबसे व्यापक व गहन रूप सामाजिक दासता है और उसके उन्मूलन के बिना कोई भी स्वतंत्रता कुछ लोगों का विशेषाधिकार रहेगी, इसलिए अधूरी होगी।*

उनके चिंतन व रचनात्मकता के मुख्यत: तीन प्रेरक व्यक्ति रहे—बुद्ध, कबीर और ज्योतिबा फुले। जातिवादी उत्पीड़न के कारण हिंदू समाज से मोहभंग होने के बाद वे बुद्ध के समतावादी दर्शन में आश्वस्त हुए और 14 अक्तूबर, सन् 1956 को 5 लाख अनुयायियों के साथ बौद्ध मतानुयायी बन गए।

भारत के संविधान-निर्माण में उनकी महती भूमिका और एकनिष्ठ समर्पण के कारण ही हम आज उन्हें भारतीय संविधान का निर्माता कह कर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। उनकी समूची बहुमुखी विद्वत्ता एकांत ज्ञान-साधना की जगह मानव-मुक्ति व जन-कल्याण के लिए थी—यह बात वे अपने चिंतन और क्रिया के क्षणों से बराबर साबित करते रहे। अपने इस प्रयोजन में वे अधिकतर सफल भी हुए।

यहाँ प्रस्तुत पाठ आंबेडकर के विख्यात भाषण ***एनीहिलेशन ऑफ़ कास्ट (1936)*** *के ललई सिंह यादव द्वारा कृत हिंदी-रूपांतर* ***जाति-भेद का उच्छेद*** *के दो प्रकरणों के तौर पर है। यह भाषण जाति-पाँति तोड़क मंडल (लाहौर) के वार्षिक सम्मेलन (सन् 1936) के अध्यक्षीय भाषण के रूप में तैयार किया गया था; परंतु इसकी क्रांतिकारी दृष्टि से आयोजकों की पूर्णत: सहमति न बन सकने के कारण सम्मेलन ही स्थगित हो गया और यह पढ़ा न जा सका। बाद में, आंबेडकर ने इसे स्वतंत्र पुस्तिका के रूप में प्रकाशित कर वितरित किया, जो पर्याप्त लोकप्रिय हुई। उनके अनुसार समानता, स्वतंत्रता व बंधुता— ये तीन तत्त्व आदर्श समाज में अनिवार्यत: होने चाहिए, जिससे लोकतंत्र सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया के अर्थ तक भी पहुँचे। यहाँ प्रस्तुत पाठ उक्त पुस्तिका के प्रतिनिधि प्रकरण हैं। आज के जाति-मज़हब आधारित विषाक्त सामाजिक-राजनैतिक माहौल में इनकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है।*

© NCERT not to be republished

श्रम विभाजन और जाति-प्रथा

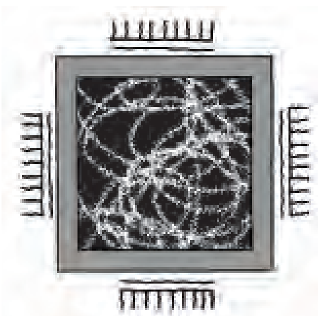

यह विडंबना की ही बात है, कि इस युग में भी 'जातिवाद' के पोषकों की कमी नहीं हैं। इसके पोषक कई आधारों पर इसका समर्थन करते हैं। समर्थन का एक आधार यह कहा जाता है, कि आधुनिक सभ्य समाज 'कार्य-कुशलता' के लिए श्रम विभाजन को आवश्यक मानता है, और चूँकि जाति-प्रथा भी श्रम विभाजन का ही दूसरा रूप है इसलिए इसमें कोई बुराई नहीं है। इस तर्क के संबंध में पहली बात तो यही आपत्तिजनक है, कि जाति-प्रथा श्रम विभाजन के साथ-साथ श्रमिक-विभाजन का भी रूप लिए हुए है। श्रम विभाजन, निश्चय ही सभ्य समाज की आवश्यकता है, परंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम विभाजन की व्यवस्था श्रमिकों का विभिन्न वर्गों में अस्वाभाविक विभाजन नहीं करती। भारत की जाति-प्रथा की एक और विशेषता यह है कि यह श्रमिकों का अस्वाभाविक विभाजन ही नहीं करती बल्कि विभाजित विभिन्न वर्गों को एक-दूसरे की अपेक्षा ऊँच-नीच भी करार देती है, जो कि विश्व के किसी भी समाज में नहीं पाया जाता।

जाति-प्रथा को यदि श्रम विभाजन मान लिया जाए, तो यह स्वाभाविक विभाजन नहीं है, क्योंकि यह मनुष्य की रुचि पर आधारित नहीं है। कुशल व्यक्ति या सक्षम-श्रमिक-समाज का निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम व्यक्तियों की क्षमता इस सीमा तक विकसित करें, जिससे वह अपना पेशा या कार्य का चुनाव स्वयं कर सके। इस सिद्धांत के विपरीत जाति-प्रथा का दूषित सिद्धांत यह है कि इससे मनुष्य के प्रशिक्षण अथवा उसकी निजी क्षमता का विचार किए बिना, दूसरे ही दृष्टिकोण जैसे माता-पिता के सामाजिक स्तर के अनुसार, पहले से ही अर्थात गर्भधारण के समय से ही मनुष्य का पेशा निर्धारित कर दिया जाता है।

जाति-प्रथा पेशे का दोषपूर्ण पूर्वनिर्धारण ही नहीं करती बल्कि मनुष्य को जीवन-भर के लिए एक पेशे में बाँध भी देती है। भले ही पेशा अनुपयुक्त या अपर्याप्त होने के कारण वह भूखों मर जाए। आधुनिक युग में यह स्थिति प्रायः आती है, क्योंकि उद्योग-धंधों की प्रक्रिया व तकनीक में निरंतर विकास और कभी-कभी अकस्मात परिवर्तन हो जाता है,

© NCERT not to be republished

जिसके कारण मनुष्य को अपना पेशा बदलने की आवश्यकता पड़ सकती है और यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मनुष्य को अपना पेशा बदलने की स्वतंत्रता न हो, तो इसके लिए भूखों मरने के अलावा क्या चारा रह जाता है? हिंदू धर्म की जाति प्रथा किसी भी व्यक्ति को ऐसा पेशा चुनने की अनुमति नहीं देती है, जो उसका पैतृक पेशा न हो, भले ही वह उसमें पारंगत हो। इस प्रकार पेशा परिवर्तन की अनुमति न देकर जाति-प्रथा भारत में बेरोजगारी का एक प्रमुख व प्रत्यक्ष कारण बनी हुई है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्रम विभाजन की दृष्टि से भी जाति-प्रथा गंभीर दोषों से युक्त है। जाति-प्रथा का श्रम विभाजन मनुष्य की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं रहता। मनुष्य की व्यक्तिगत भावना तथा व्यक्तिगत रुचि का इसमें कोई स्थान अथवा महत्त्व नहीं रहता। 'पूर्व लेख' ही इसका आधार है। इस आधार पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आज के उद्योगों में गरीबी और उत्पीड़न इतनी बड़ी समस्या नहीं जितनी यह कि बहुत से लोग 'निर्धारित' कार्य को 'अरुचि' के साथ केवल विवशतावश करते हैं। ऐसी स्थिति स्वभावतः मनुष्य को दुर्भावना से ग्रस्त रहकर टालू काम करने और कम काम करने के लिए प्रेरित करती है। ऐसी स्थिति में जहाँ काम करने वालों का न दिल लगता हो न दिमाग, कोई कुशलता कैसे प्राप्त की जा सकती है। अतः यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि आर्थिक पहलू से भी जाति-प्रथा हानिकारक प्रथा है। क्योंकि यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रेरणारुचि व आत्म-शक्ति को दबा कर उन्हें अस्वाभाविक नियमों में जकड़ कर निष्क्रिय बना देती है।

मेरी कल्पना का आदर्श-समाज

जाति-प्रथा के खेदजनक परिणामों की नीरस गाथा को सुनते-सुनाते आप में से कुछ लोग निश्चय ही ऊब गए होंगे। यह अस्वाभाविक भी नहीं है। अतः अब मैं समस्या के रचनात्मक पहलू को लेता हूँ। मेरे द्वारा जाति-प्रथा की आलोचना सुनकर आप लोग मुझसे यह प्रश्न पूछना चाहेंगे कि यदि मैं जातियों के विरुद्ध हूँ, तो फिर मेरी दृष्टि में आदर्श-समाज क्या है? ठीक है, यदि ऐसा पूछेंगे, तो मेरा उत्तर होगा कि मेरा आदर्श-समाज स्वतंत्रता, समता, भ्रातृता पर आधारित होगा। क्या यह ठीक नहीं है, भ्रातृता अर्थात भाईचारे में किसी को क्या आपत्ति हो सकती है? किसी भी आदर्श-समाज में इतनी गतिशीलता होनी चाहिए जिससे कोई भी वांछित परिवर्तन समाज के एक छोर से दूसरे तक संचारित हो सके। ऐसे समाज के बहुविधि हितों में सबका भाग होना चाहिए तथा सबको उनकी रक्षा के प्रति सजग रहना चाहिए। सामाजिक जीवन में अबाध संपर्क के अनेक साधन व अवसर उपलब्ध रहने चाहिए। तात्पर्य यह कि दूध-पानी के मिश्रण की तरह भाईचारे का यही वास्तविक रूप है, और इसी

© NCERT not to be republished

का दूसरा नाम लोकतंत्र है। क्योंकि लोकतंत्र केवल शासन की एक पद्धति ही नहीं है, लोकतंत्र मूलत: सामूहिक जीवनचर्या की एक रीति तथा समाज के सम्मिलित अनुभवों के आदान-प्रदान का नाम है। इनमें यह आवश्यक है कि अपने साथियों के प्रति श्रद्धा व सम्मान का भाव हो।

इसी प्रकार स्वतंत्रता पर भी क्या कोई आपत्ति हो सकती है? गमनागमन की स्वाधीनता, जीवन तथा शारीरिक सुरक्षा की स्वाधीनता के अर्थों में शायद ही कोई 'स्वतंत्रता' का विरोध करे। इसी प्रकार संपत्ति के अधिकार, जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक औज़ार व सामग्री रखने के अधिकार जिससे शरीर को स्वस्थ रखा जा सके, के अर्थ में भी 'स्वतंत्रता' पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती। तो फिर मनुष्य की शक्ति के सक्षम एवं प्रभावशाली प्रयोग की भी स्वतंत्रता क्यों न प्रदान की जाए?

जाति-प्रथा के पोषक, जीवन, शारीरिक-सुरक्षा तथा संपत्ति के अधिकार की स्वतंत्रता को तो स्वीकार कर लेंगे, परंतु मनुष्य के सक्षम एवं प्रभावशाली प्रयोग की स्वतंत्रता देने के लिए जल्दी तैयार नहीं होंगे, क्योंकि इस प्रकार की स्वतंत्रता का अर्थ होगा अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता किसी को नहीं है, तो उसका अर्थ उसे 'दासता' में जकड़कर रखना होगा, क्योंकि 'दासता' केवल कानूनी पराधीनता को ही नहीं कहा जा सकता। 'दासता' में वह स्थिति भी सम्मिलित है जिससे कुछ व्यक्तियों को दूसरे लोगों के द्वारा निर्धारित व्यवहार एवं कर्तव्यों का पालन करने के लिए विवश होना पड़ता है। यह स्थिति कानूनी पराधीनता न होने पर भी पाई जा सकती है। उदाहरणार्थ, जाति प्रथा की तरह ऐसे वर्ग होना संभव है, जहाँ कुछ लोगों की अपनी इच्छा के विरुद्ध पेशे अपनाने पड़ते हैं।

अब आइए समता पर विचार करें। क्या 'समता' पर किसी की आपत्ति हो सकती है। फ्रांसीसी क्रांति के नारे में 'समता' शब्द ही विवाद का विषय रहा है। 'समता' के आलोचक यह कह सकते हैं कि सभी मनुष्य बराबर नहीं होते। और उनका यह तर्क वज़न भी रखता है। लेकिन तथ्य होते हुए भी यह विशेष महत्त्व नहीं रखता। क्योंकि शाब्दिक अर्थ में 'समता' असंभव होते हुए भी यह नियामक सिद्धांत है। मनुष्यों की क्षमता तीन बातों पर निर्भर रहती है। (1) शारीरिक वंश परंपरा, (2) सामाजिक उत्तराधिकार अर्थात सामाजिक परंपरा के रूप में माता-पिता की कल्याण कामना, शिक्षा तथा वैज्ञानिक ज्ञानार्जन आदि, सभी उपलब्धियाँ जिनके कारण सभ्य समाज, जंगली लोगों की अपेक्षा विशिष्टता प्राप्त करता है, और अंत में (3) मनुष्य के अपने प्रयत्न। इन तीनों दृष्टियों से निस्संदेह मनुष्य समान नहीं होते। तो क्या इन विशेषताओं के कारण, समाज को भी उनके साथ असमान व्यवहार करना चाहिए? समता विरोध करने वालों के पास इसका क्या जवाब है?

© NCERT not to be republished

व्यक्ति विशेष के दृष्टिकोण से, असमान प्रयत्न के कारण, असमान व्यवहार को अनुचित नहीं कहा जा सकता। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता का विकास करने का पूरा प्रोत्साहन देना सर्वथा उचित है। परंतु यदि मनुष्य प्रथम दो बातों में असमान है, तो क्या इस आधार पर उनके साथ भिन्न व्यवहार उचित हैं? उत्तम व्यवहार के हक की प्रतियोगिता में वे लोग निश्चय ही बाज़ी मार ले जाएँगे, जिन्हें उत्तम कुल, शिक्षा, पारिवारिक ख्याति, पैतृक संपदा तथा व्यवसायिक प्रतिष्ठा का लाभ प्राप्त है। इस प्रकार पूर्ण सुविधा संपन्नों को ही 'उत्तम व्यवहार' का हकदार माना जाना वास्तव में निष्पक्ष निर्णय नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह सुविधा संपन्नों के पक्ष में निर्णय देना होगा। अत: न्याय का तकाज़ा यह है कि जहाँ हम तीसरे (प्रयासों की असमानता, जो मनुष्यों के अपने वश की बात है) आधार पर मनुष्यों के साथ असमान व्यवहार को उचित ठहराते हैं, वहाँ प्रथम दो आधारों (जो मनुष्य के अपने वश की बातें नहीं हैं) पर उनके साथ असमान व्यवहार नितांत अनुचित है। और हमें ऐसे व्यक्तियों के साथ यथासंभव समान व्यवहार करना चाहिए। दूसरे शब्दों में, समाज की यदि अपने सदस्यों से अधिकतम उपयोगिता प्राप्त करनी है, तो यह तो संभव है, जब समाज के सदस्यों को आरंभ से ही समान अवसर एवं समान व्यवहार उपलब्ध कराए जाए।

'समता' का औचित्य यहीं पर समाप्त नहीं होता। इसका और भी आधार उपलब्ध है। एक राजनीतिज्ञ पुरुष का बहुत बड़ी जनसंख्या से पाला पड़ता है। अपनी जनता से व्यवहार करते समय, राजनीतिज्ञ के पास न तो इतना समय होता है न प्रत्येक के विषय में इतनी जानकारी ही होती है, जिससे वह सबकी अलग-अलग आवश्यकताओं तथा क्षमताओं के आधार पर वांछित व्यवहार अलग-अलग कर सके। वैसे भी आवश्यकताओं और क्षमताओं के आधार पर भिन्न व्यवहार कितना भी आवश्यक तथा औचित्यपूर्ण क्यों न हो, 'मानवता' के दृष्टिकोण से समाज दो वर्गों व श्रेणियों में नहीं बाँटा जा सकता। ऐसी स्थिति में, राजनीतिज्ञ को अपने व्यवहार में एक व्यवहार्य सिद्धांत की आवश्यकता रहती है और यह व्यवहार्य सिद्धांत यही होता है, कि सब मनुष्यों के साथ समान व्यवहार किया जाए। राजनीतिज्ञ यह व्यवहार इसलिए नहीं करता कि सब लोग समान होते, बल्कि इसलिए कि वर्गीकरण एवं श्रेणीकरण संभव होता।

इस प्रकार 'समता' यद्यपि काल्पनिक जगत की वस्तु है, फिर भी राजनीतिज्ञ को सभी परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए, उसके लिए यही मार्ग भी रहता है, क्योंकि यही व्यावहारिक भी है और यही उसके व्यवहार की एकमात्र कसौटी भी है।

© NCERT not to be republished

अभ्यास

पाठ के साथ

1. जाति प्रथा को श्रम-विभाजन का ही एक रूप न मानने के पीछे आंबेडकर के क्या तर्क हैं?
2. जाति प्रथा भारतीय समाज में बेरोजगारी व भुखमरी का भी एक कारण कैसे बनती रही है? क्या यह स्थिति आज भी है?
3. लेखक के मत से 'दासता' की व्यापक परिभाषा क्या है?
4. शारीरिक वंश-परंपरा और सामाजिक उत्तराधिकार की दृष्टि से मनुष्यों में असमानता संभावित रहने के बावजूद आंबेडकर 'समता' को एक व्यवहार्य सिद्धांत मानने का आग्रह क्यों करते हैं? इसके पीछे उनके क्या तर्क हैं?
5. सही में आंबेडकर ने भावनात्मक समत्व की मानवीय दृष्टि के तहत जातिवाद का उन्मूलन चाहा है, जिसकी प्रतिष्ठा के लिए भौतिक स्थितियों और जीवन-सुविधाओं का तर्क दिया है। क्या इससे आप सहमत हैं?
6. आदर्श समाज के तीन तत्त्वों में से एक 'भ्रातृता' को रखकर लेखक ने अपने आदर्श समाज में स्त्रियों को भी सम्मिलित किया है अथवा नहीं? आप इस 'भ्रातृता' शब्द से कहाँ तक सहमत हैं? यदि नहीं तो आप क्या शब्द उचित समझेंगे/समझेंगी?

© NCERT not to be republished

पाठ के आसपास

1. आंबेडकर ने जाति प्रथा के भीतर पेशे के मामले में लचीलापन न होने की जो बात की है–उस संदर्भ में शेखर जोशी की कहानी 'गलता लोहा' पर पुनर्विचार कीजिए।
2. ***कार्य कुशलता पर जाति प्रथा का प्रभाव*** विषय पर समूह में चर्चा कीजिए। चर्चा के दौरान उभरने वाले बिंदुओं को लिपिबद्ध कीजिए।

इन्हें भी जानें

* आंबेडकर की पुस्तक **जातिभेद का उच्छेद** और इस विषय में गांधी जी के साथ उनके संवाद की जानकारी प्राप्त कीजिए।
* ***हिंद स्वराज*** नामक पुस्तक में गांधी जी ने कैसे आदर्श समाज की कल्पना की है, उसे भी पढ़ें।